

स्वयं को रिक्त करना

(Kenosis / केनोसिस)

“वरन् अपने आप को ऐसा शून्य कर दिया, और दास का स्वरूप धारण किया...”
(फिलिप्पियों 2:7)

जेम्स किम

विषय-सूची

भूमिका	4
“छोड़ देना” नहीं, बल्कि “स्वयं को रिक्त करना” क्यों?	
भाग 1: “स्वयं को रिक्त करने” का बाइबिलीय आधार	
अध्याय 1: स्वयं को रिक्त करना (Kenosis) क्या है?	8
यीशु के स्वयं को रिक्त करने का बाइबिलीय और धर्मवैज्ञानिक अर्थ	
अध्याय 2: एक मसीही के लिए स्वयं को रिक्त करने का क्या अर्थ है?	12
अपने जीवन का स्वामी स्वयं बनने की इच्छा से हृदय को रिक्त करना	
अध्याय 3: स्वयं को रिक्त करके दास के समान अपने पड़ोसी की सेवा करने का क्या अर्थ है?	18
मसीह के मन से प्रेम और सेवा करना	
भाग 2: वे बातें जिन्हें हमें अपने भीतर से रिक्त करना है	
अध्याय 4: “घमंड” को रिक्त करना	25
अपने आप को ऊँचा उठाने की इच्छा को रिक्त करना	
अध्याय 5: “लोभ” को रिक्त करना	34
और अधिक पाने की इच्छा को रिक्त करना	
अध्याय 6: “पाखंड” को रिक्त करना	41
मैं जैसा दिखाई देता हूँ और वास्तव में जैसा हूँ, उनके बीच की दूरी को मिटाना	
अध्याय 7: “झूठ” को रिक्त करना	53
सत्य को छिपाने और विकृत करने की इच्छा को रिक्त करना	

अध्याय 8: “घृणा” को रिक्त करना	64
चोट और बदले की भावना को अपने हृदय पर शासन न करने देना	
अध्याय 9: “बुरे विचारों” को रिक्त करना	73
हर विचार को बंदी बनाकर मसीह की आज्ञाकारिता में लाना	
अध्याय 10: “कामुकता” को रिक्त करना	84
गलत इच्छाओं को रिक्त करना और प्रेम तथा पवित्रता की रक्षा करना	
अध्याय 11: “कुड़कुड़ाहट और शिकायत” को रिक्त करना	96
अविश्वास और असंतोष को रिक्त करके परमेश्वर पर भरोसा करना	
अध्याय 12: “ईर्ष्या” को रिक्त करना	106
तुलना को रिक्त करके कृतज्ञता और प्रेम में जीना	
भाग 3: रिक्त किए गए स्थान को मसीह से भरना	
अध्याय 13: मसीह से भरना	118
ऐसा जीवन जिसमें अब मैं नहीं, बल्कि मसीह मुझ में जीवित हैं	
निष्कर्ष	127
स्वयं को रिक्त करें और मसीह से भर जाएँ	
यीशु मसीह के शिष्य के रूप में प्रतिदिन “स्वयं को रिक्त करने” के मार्ग पर चलना	

भूमिका

आज मसीहियों की दैनिक बातचीत और कलीसिया के मंच से सबसे अधिक सुनाई देने वाली विश्वास की अभिव्यक्तियों में से एक है—“छोड़ देना।”

मंगोलिया में सेवा करने वाले एक विश्वासयोग्य मिशनरी की पुस्तक के माध्यम से इस अभिव्यक्ति ने कोरियाई कलीसिया और विश्वासियों के हृदय में गहरी आत्मिक प्रतिध्वनि उत्पन्न की। इसके बाद “छोड़ देना” केवल कलीसियाई पद और सेवकाई की बुलाहट से संबंधित अभिव्यक्ति न रहकर अनेक मसीहियों के लिए अपने विश्वास को व्यक्त करने वाली एक परिचित अभिव्यक्ति बन गई। मैंने भी लंबे समय तक इस अभिव्यक्ति का उपयोग किया है। लेकिन जब मैंने पवित्रशास्त्र पर और गहराई से मनन किया और पासबानी सेवकाई में विश्वासियों के जीवन को देखा, तो मेरे मन में यह प्रश्न उठने लगा कि क्या “छोड़ देने” की अपेक्षा “स्वयं को रिक्त करना” वह अभिव्यक्ति नहीं है जो बाइबल में बताए गए शिष्यत्व के सार को अधिक स्पष्ट रूप से प्रकट करती है? “छोड़ देने” का अर्थ है कि मेरे हाथ में जो कुछ है, उसे कुछ समय के लिए नीचे रख देना। हम लोभ को छोड़ते हैं, आसक्ति को छोड़ते हैं और कभी-कभी अपने अधिकारों या अपने लाभ को भी छोड़ देते हैं। निस्संदेह, यह विश्वास का एक महत्वपूर्ण अनुशासन है। लेकिन इसकी एक सीमा है। केवल इसलिए कि मैंने अपने हाथ में पकड़ी हुई वस्तु को छोड़ दिया है, यह आवश्यक नहीं कि उसे फिर से पकड़ लेने की इच्छा रखने वाला मेरा हृदय भी बदल गया हो। आज मैं किसी चीज़ को छोड़ सकता हूँ, लेकिन कल उसे फिर से पकड़ सकता हूँ। बाहर से मैंने लोभ को छोड़ दिया हो सकता है, फिर भी अपने हृदय की गहराई में मैं अब भी अपने जीवन का स्वामी स्वयं बनना चाहता हूँ। परिस्थितियाँ और हालात बदलने पर मैं फिर से अपनी इच्छा और अपनी अभिलाषाओं को पकड़ सकता हूँ। इसलिए पवित्रशास्त्र हमसे केवल किसी वस्तु को छोड़ देने के कार्य की अपेक्षा नहीं करता। इस विचार को ही अपने भीतर से रिक्त करना कि “मैं अपने जीवन का स्वामी हूँ,” और अपने जीवन के केंद्र तथा अधिकार को परमेश्वर को सौंप देना—यही शिष्यत्व का अधिक गहरा स्तर है। इसके केंद्र में यीशु मसीह का “स्वयं को रिक्त करना” है। फिलिप्पियों 2:7 कहता है: “वरन् अपने आप को रिक्त कर दिया, और दास का स्वरूप धारण किया, और मनुष्य की समानता में हो गया।” यीशु अपने स्वभाव में परमेश्वर के साथ एक थे, फिर भी हमें बचाने के लिए उन्होंने स्वयं को दीन किया और दास का स्वरूप धारण किया। यहाँ “अपने आप को रिक्त किया” का अर्थ यह नहीं है कि यीशु ने अपनी दिव्यता त्याग दी। बल्कि इसका अर्थ यह है कि उन्होंने अपनी महिमा और अपने अधिकारों पर दावा नहीं किया, बल्कि स्वयं को नम्र किया, दास के स्थान तक उतर आए और परमेश्वर की इच्छा के प्रति पूर्ण रूप से आज्ञाकारी बने। यही स्वयं को रिक्त करने का वह मार्ग है जो यीशु मसीह ने हमें दिखाया। इसलिए “स्वयं को रिक्त करना” का अर्थ यह नहीं कि हमारे पास कुछ भी न हो। इसका अर्थ है अपने जीवन का स्वामी स्वयं बनने की इच्छा से अपने आपको रिक्त करना और वह स्थान मसीह को सौंप देना। इसका अर्थ है अपनी हठधर्मिता को रिक्त करके परमेश्वर की इच्छा को स्वीकार करना। अपने घमंड को रिक्त करके नम्रता सीखना। अपने लोभ और भय को रिक्त करके परमेश्वर की विश्वासयोग्यता पर भरोसा करना। इस दृष्टि से देखें तो स्वयं को रिक्त करना केवल त्याग नहीं है। रिक्त होना एक नई परिपूर्णता के लिए तैयारी है। मैं अपने विचारों को रिक्त करता हूँ ताकि परमेश्वर के

वचन से भर सकूँ। मैं अपने लोभ को रिक्त करता हूँ ताकि परमेश्वर की इच्छा खोज सकूँ। मैं अपने घमंड को रिक्त करता हूँ ताकि मसीह की नम्रता को धारण कर सकूँ। मैं अपनी घृणा को रिक्त करता हूँ ताकि प्रेम से भर सकूँ। मैं अपने जीवन का स्वामी स्वयं बनने की इच्छा को रिक्त करता हूँ ताकि मसीह मेरे जीवन के प्रभु बनें। इसलिए एक विश्वासी का जीवन केवल इस प्रश्न पर समाप्त नहीं होना चाहिए, “मुझे क्या छोड़ना चाहिए?” हमें ये दोनों प्रश्न एक साथ पूछने चाहिए: “मेरे भीतर से क्या रिक्त किया जाना चाहिए?” और: “उस रिक्त स्थान को किससे भरा जाना चाहिए?” यीशु के शिष्य के रूप में जीने का अर्थ है प्रतिदिन स्वयं को इन प्रश्नों के सामने खड़ा करना। इसका अर्थ है परमेश्वर के वचन के प्रकाश में अपने विचारों और इच्छाओं, अपने अभिमान और हठ, अपने लोभ और भय, अपनी घृणा और घावों तथा संसार के प्रति अपनी आसक्तियों की जाँच करना और उन्हें अपने भीतर से रिक्त करना। और फिर उस रिक्त स्थान को पवित्र आत्मा की अगुवाई, परमेश्वर के वचन और मसीह के प्रेम से भरना। निस्संदेह, यह केवल हमारी इच्छा-शक्ति और प्रयास से पूरा नहीं हो सकता। अपनी शक्ति से हम पाप की पुरानी आदतों और आत्मकेंद्रित स्वभाव को मूल रूप से नहीं बदल सकते। इसलिए हमें क्रूस के अनुग्रह पर निर्भर रहना चाहिए। हमें उस मसीह की ओर देखना चाहिए जिन्होंने हमारे लिए स्वयं को दे दिया, और हमारे भीतर कार्य करने वाले पवित्र आत्मा की सहायता माँगनी चाहिए। इस पुस्तक में जिस “रिक्त होने” की बात की गई है, वह इसी अनुग्रह के स्थान से आरंभ होता है। आगे हम पवित्रशास्त्र के दर्पण के सामने स्वयं को देखते हुए अपने जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में छिपी उन बातों को एक-एक करके जाँचेंगे जिन्हें रिक्त करने की आवश्यकता है। हम घमंड, लोभ, पाखंड, झूठ, घृणा, बुरे विचार, कामुकता, कुड़कुड़ाहट और ईर्ष्या को अपने भीतर से रिक्त करने के मार्ग पर विचार करेंगे। परंतु इस पुस्तक का उद्देश्य हमें निरंतर दोषी ठहराना नहीं है। बल्कि इसका उद्देश्य हमारी दृष्टि उस मसीह की ओर मोड़ना है जिन्होंने पहले हमारे लिए स्वयं को रिक्त किया। हम स्वयं को रिक्त करने का कितना भी प्रयास क्यों न करें, यदि परमेश्वर का अनुग्रह न हो तो हम उन्हीं बातों से फिर भर जाएँगे जिन्हें हमने निकालने का प्रयास किया था। इसलिए अपनी दुर्बलता को स्वीकार करते हुए हमें हर उस स्थान पर मसीह का अनुग्रह माँगना चाहिए जहाँ रिक्त होने की आवश्यकता है। और हमें स्वयं को पवित्र आत्मा के हाथों में सौंपना चाहिए, ताकि जिस हृदय को वह रिक्त करते हैं उसे परमेश्वर के वचन और प्रेम से भरते जाएँ। अब हम पवित्रशास्त्र के दर्पण के सामने शांत होकर खड़े होना चाहते हैं। मैं किस चीज़ को पकड़े हुए हूँ? ऐसा क्या है जिसे मैं अब भी पकड़े हुए हूँ? मेरे हृदय की गहराई से क्या रिक्त किया जाना चाहिए? और उस रिक्त स्थान को मैं किससे भर रहा हूँ? जब हम इन प्रश्नों से बचने के बजाय ईमानदारी से उनका सामना करेंगे, तब “स्वयं को रिक्त करना” केवल विश्वास का नारा नहीं रहेगा, बल्कि हमारे जीवन को बदलने वाला शिष्यत्व का एक व्यावहारिक मार्ग बन जाएगा। मेरी आशा है कि यह पुस्तक उस मार्ग पर चलने वालों के लिए एक छोटी-सी मार्गदर्शिका बने। इस पुस्तक को लिखने की प्रक्रिया में मैंने कृत्रिम बुद्धिमत्ता की सहायता भी ली है। इस पुस्तक की सामग्री उन मननों और विचारों पर आधारित है जिन्हें मैंने लंबे समय तक पवित्रशास्त्र पर मनन करते हुए और पासबानी सेवकाई में परमेश्वर के वचन का प्रचार करते हुए लिखकर संजोया है। वर्षों से लिखे गए मेरे बाइबल-मननों और संदेशों को संदर्भ के रूप में लेकर कृत्रिम बुद्धिमत्ता ने विषयों और विचारों के प्रवाह को व्यवस्थित करने तथा जिन विचारों को मैं व्यक्त करना चाहता था उन्हें अधिक स्पष्ट रूप से प्रस्तुत करने के लिए वाक्यों को परिष्कृत करने में मेरी सहायता की। फिर भी इस पुस्तक की आत्मिक दिशा, पवित्रशास्त्र की समझ, और हमें क्या रिक्त करना चाहिए तथा उस रिक्त स्थान को किससे भरना चाहिए—इन सब पर किए गए मनन का केंद्र मेरी जिम्मेदारी के अधीन है। सबसे बढ़कर, मैंने इस पुस्तक की प्रत्येक बात को परमेश्वर के वचन के सामने फिर से जाँचने, परखने और परिष्कृत करने का प्रयास किया है। मेरी प्रार्थना है कि इस पुस्तक को पढ़ने वाला प्रत्येक व्यक्ति मनुष्य के लिखे हुए शब्दों से आगे बढ़कर पवित्रशास्त्र के वचन की ओर देखे, और इस पुस्तक को लिखने वाले व्यक्ति से आगे बढ़कर यीशु मसीह की ओर देखे, जिन्होंने पहले हमारे लिए स्वयं को रिक्त किया और अपने आपको हमारे लिए दे दिया।

पवित्र आत्मा द्वारा किए जाने वाले स्वयं को रिक्त करने के पवित्र कार्य की नम्रता से लालसा करते हुए, आज भी अपने भीतर से स्वयं अपने जीवन का स्वामी बनने की इच्छा को रिक्त करते हुए, और यह प्रार्थना करते हुए कि केवल मसीह ही मेरे जीवन के प्रभु हों,

जेम्स किम की ओर से साझा

12 सितंबर 2026

अपनी दुर्बलता के बीच—जब मैं अपने आत्मकेंद्रित स्वभाव को पूरी तरह रिक्त नहीं कर पाता और कभी-कभी उन बातों को भी पकड़े रहता हूँ जिन्हें मुझे रिक्त कर देना चाहिए—मैं केवल परमेश्वर की विश्वासयोग्य करुणा की खोज करता हूँ...

भाग 1:
“स्वयं को रिक्त करने” का बाइबिलीय आधार

अध्याय 1:

“स्वयं को रिक्त करना” (Kenosis) क्या है?

यीशु मसीह ने जिस “रिक्त होने” को दिखाया, वह क्या है?

फिलिप्पियों 2 में पौलुस हमारे सामने मसीह की नम्रता और स्वयं को रिक्त करने का स्वरूप प्रस्तुत करता है। यीशु ने स्वयं को दीन किया, दास का स्वरूप धारण किया और अंत तक परमेश्वर की इच्छा के प्रति आज्ञाकारी रहे। तो फिर, पवित्रशास्त्र जिस “स्वयं को रिक्त करने” की बात करता है, वह वास्तव में क्या है? इसका उत्तर समझने के लिए हमें सबसे पहले फिलिप्पियों 2:7 को देखना चाहिए: “वरन् अपने आप को रिक्त कर दिया, और दास का स्वरूप धारण किया, और मनुष्य की समानता में हो गया।” इस एक पद में मसीही शिष्यत्व के लिए एक अत्यंत महत्वपूर्ण मार्ग समाया हुआ है।

स्वयं को रिक्त करने की शुरुआत देहधारण से होती है

यीशु मसीह, जो परमेश्वर हैं, मनुष्य का शरीर धारण करके इस संसार में आए। इस घटना को हम **देहधारण (Incarnation)** कहते हैं। यूहन्ना 1:14 गवाही देता है: “वचन देहधारी हुआ और हमारे बीच में डेरा किया।” यहाँ जिस “वचन” की बात की गई है, वह वही हैं जो आदि से परमेश्वर के साथ थे और स्वयं परमेश्वर हैं (पद 1)। सब वस्तुएँ उन्हीं के द्वारा सृजी गईं (पद 3)। उनमें जीवन था, और वह जीवन मनुष्यों की ज्योति था (पद 4)। फिर भी वही वचन देहधारी हुआ। जिस सृष्टिकर्ता ने हमें बनाया, वह अपनी ही बनाई हुई सृष्टि के स्थान तक उतर आए। जो स्वर्ग की महिमा में थे, उन्होंने मनुष्य का शरीर धारण किया; जो महिमा और आदर पाने के योग्य थे, वे दीन स्थान में आए। देहधारण मसीही विश्वास के सबसे आश्चर्यजनक रहस्यों में से एक है। सृष्टिकर्ता अपनी सृष्टि के बीच आए, और प्रभु दास के स्थान तक उतर आए। यहीं से बाइबल के “स्वयं को रिक्त करने” का अर्थ आरंभ होता है।

“Kenosis” का क्या अर्थ है?

फिलिप्पियों 2:7 में “अपने आप को रिक्त किया” के लिए प्रयुक्त यूनानी क्रिया **kenoō (κενόω)** है। इसी शब्द से धर्मवैज्ञानिक शब्द **Kenosis** निकला है। तो यीशु द्वारा स्वयं को रिक्त करने का क्या अर्थ है? सबसे पहले एक बात बिल्कुल स्पष्ट होनी चाहिए: **यीशु ने अपनी दिव्यता को रिक्त नहीं किया।** यीशु के मनुष्य बनने का अर्थ यह नहीं कि उन्होंने परमेश्वर होना छोड़ दिया। देहधारी यीशु पूर्ण रूप से परमेश्वर और उसी समय पूर्ण रूप से मनुष्य थे। यदि हम यह समझें कि यीशु ने अपनी दिव्यता त्याग दी, तो हम देहधारण और सुसमाचार के मूल सत्य को ही विकृत कर देंगे। तो फिर “अपने आप को रिक्त किया” का क्या अर्थ है? फिलिप्पियों 2 के पूरे संदर्भ को देखने पर इसका अर्थ अधिक स्पष्ट हो जाता है। यीशु परमेश्वर के स्वरूप में थे, फिर भी अपने पद और महिमा को पकड़े रहने के बजाय उन्होंने स्वयं को नम्र किया। उन्होंने दास का स्वरूप धारण किया, मनुष्यों के समान बने और मृत्यु तक—हाँ, क्रूस की मृत्यु तक—आज्ञाकारी रहे (पद 6-8)। इसलिए यीशु का स्वयं को रिक्त करना अपनी दिव्यता को त्यागना नहीं था, बल्कि स्वयं को नम्र करके दास के स्थान तक उतरना था। अपने अधिकारों पर जोर देने के बजाय प्रभु ने हमारी सेवा की। अपनी महिमा प्रकट करने के बजाय उन्होंने स्वयं को नम्र किया। अपनी इच्छा को प्राथमिकता देने के बजाय उन्होंने पिता की इच्छा का पालन किया। अंततः क्रूस पर उन्होंने स्वयं को हमारे लिए दे दिया। यही वह **Kenosis** है जो यीशु ने हमें दिखाया।

रिक्त होना “मिट जाना” नहीं, बल्कि “स्वयं को समर्पित करना” है

यहाँ हम स्वयं को रिक्त करने का एक महत्वपूर्ण सिद्धांत पाते हैं। स्वयं को रिक्त करने का अर्थ यह नहीं कि मैं ऐसा व्यक्ति बन जाऊँ जिसका कोई मूल्य या महत्व नहीं। और इसका अर्थ यह भी नहीं कि मैं अपने पास की हर वस्तु को बिना किसी विवेक के त्याग दूँ। बाइबल के अनुसार स्वयं को रिक्त करने का अर्थ है अपने जीवन का स्वामी स्वयं बनने की इच्छा को खाली करना और स्वयं को परमेश्वर की इच्छा के लिए समर्पित करना। यीशु ने अपने अस्तित्व को मिटाया नहीं। बल्कि उन्होंने स्वयं को पूरी तरह परमेश्वर को समर्पित किया। इसलिए स्वयं को रिक्त करना निष्क्रिय त्याग नहीं, बल्कि सक्रिय आज्ञाकारिता है। “प्रभु, मैं अपनी इच्छा के बजाय आपकी इच्छा को चुनूँगा।” “अपने अधिकारों पर जोर देने के बजाय मैं प्रेम से सेवा करूँगा।” यही बाइबल के अनुसार स्वयं को रिक्त करना है। यही बाइबल के अनुसार स्वयं को रिक्त करना है।

यीशु का स्वयं को रिक्त करना सेवा में प्रकट हुआ

फिलिप्पियों 2:7 में यीशु का स्वयं को रिक्त करना तुरंत एक विशेष रूप में दिखाई देता है: “दास का स्वरूप धारण किया।” केवल यह कहना पर्याप्त नहीं कि मैंने अपने हृदय में स्वयं को रिक्त कर लिया है। दि मैंने सचमुच स्वयं को रिक्त किया है,

तो उसका परिणाम दूसरों की सेवा करने वाले जीवन में दिखाई देना चाहिए। यीशु सबसे ऊँचे थे, फिर भी सबसे नीचे के स्थान तक उतर आए। प्रभु सेवा पाने के योग्य थे, फिर भी उन्होंने लोगों की सेवा की। मरकुस 10:45 में यीशु ने अपने मिशन को इस प्रकार बताया: “मनुष्य का पुत्र इसलिए नहीं आया कि उसकी सेवा टहल की जाए, पर इसलिए आया कि आप सेवा टहल करे।” इसलिए यीशु का स्वयं को रिक्त करना केवल “कुछ छोड़ देने” की घटना नहीं थी। यह स्वयं को देने की घटना थी ताकि दूसरे जीवन पाएँ। यहाँ हमारे सामने एक महत्वपूर्ण प्रश्न आता है। मुझे क्या रिक्त करना चाहिए? लेकिन इससे पहले हमें पूछना चाहिए: **मुझे किसकी सेवा करने के लिए स्वयं को रिक्त करना चाहिए?** इस प्रकार मसीह का स्वयं को रिक्त करना सदैव प्रेम और सेवा में प्रकट होता है। स्वयं को रिक्त करना हमेशा हमें प्रेम और सेवा की ओर ले जाता है।

रिक्त किए गए स्थान को किससे भरना चाहिए?

लेकिन यहाँ हमें एक और महत्वपूर्ण सत्य याद रखना चाहिए। स्वयं को रिक्त करना अपने आप में लक्ष्य नहीं है। केवल हृदय को खाली कर देना पर्याप्त नहीं। उससे भी अधिक महत्वपूर्ण यह है कि रिक्त हुए स्थान को हम किससे भरते हैं। रिक्त होना स्वयं लक्ष्य नहीं है। रिक्त स्थान को मसीह के मन से भरना आवश्यक है। अंततः स्वयं को रिक्त करने का उद्देश्य मसीह का मन धारण करना है। इसीलिए फिलिप्पियों 2:5 कहता है: “जैसा मसीह यीशु का स्वभाव था वैसा ही तुम्हारा भी स्वभाव हो।” यही कारण है कि पौलुस यीशु के स्वयं को रिक्त करने की व्याख्या करता है। वह केवल हमें यीशु की ओर देखने के लिए नहीं कहता, बल्कि हमें मसीह का मन धारण करके उनके समान जीवन जीने के लिए प्रोत्साहित करता है। इसलिए मसीह का स्वयं को रिक्त करना स्वयं को नष्ट करना नहीं है। बल्कि स्वयं को इस प्रकार समर्पित करना है कि मसीह हमारे भीतर और अधिक पूर्णता से जीवित रहें और कार्य करें।

यीशु का स्वयं को रिक्त करना हमारे जीवन में आगे बढ़ना चाहिए

यीशु का स्वयं को रिक्त करना केवल अतीत में हुई देहधारण की घटना पर समाप्त नहीं होता। मसीह का स्वयं को रिक्त करना आज उनके पीछे चलने वाले शिष्यों के जीवन में भी आगे बढ़ना चाहिए। जिस प्रकार यीशु ने स्वयं को नम्र किया, परमेश्वर की इच्छा का पालन किया और दास के स्थान से सेवा की, उसी प्रकार हमें भी अपने जीवन का स्वामी स्वयं बनने की इच्छा को रिक्त करके मसीह का मन धारण करना चाहिए। इसलिए “स्वयं को रिक्त करना” एक बार के निर्णय से पूरा नहीं होता। यह प्रतिदिन मसीह के पीछे चलकर जीने की शिष्यत्व की प्रक्रिया है।

रिक्त होने के अंत में मसीह हैं

यीशु का Kenosis स्वयं को खो देने का मार्ग नहीं था। यह परमेश्वर की इच्छा के लिए स्वयं को पूर्ण रूप से समर्पित करने का मार्ग था। प्रभु ने अपनी दिव्यता नहीं छोड़ी; उन्होंने स्वयं को नम्र किया। उन्होंने अपने अधिकारों पर जोर नहीं दिया; उन्होंने सेवा की। उन्होंने स्वयं को बचाए रखने का प्रयास नहीं किया; उन्होंने हमारे लिए स्वयं को दे दिया। अंततः वे मृत्यु तक—हाँ, क्रूस की मृत्यु तक—आज्ञाकारी रहे। इसलिए जिस “रिक्त होने” की हम बात करते हैं, उसे भी इसी मार्ग पर चलना चाहिए। स्वयं को रिक्त करने का अर्थ स्वयं को मिटाना नहीं, बल्कि अपने जीवन का स्वामी स्वयं बनने की इच्छा को रिक्त करना है। इसका अर्थ अपने पास की सारी वस्तुएँ छोड़ देना नहीं, बल्कि यह स्वीकार करना है कि मेरे पास जो कुछ है उसका वास्तविक स्वामी परमेश्वर है। इसका अर्थ कुछ भी शेष न रखना नहीं, बल्कि ऐसा स्थान बनाना है जिसे मसीह के मन से भरा जा सके। और इस रिक्त होने के अंत में हम एक बार फिर यीशु की ओर देखते हैं: “जैसा मसीह यीशु का स्वभाव था वैसा ही तुम्हारा भी स्वभाव हो।” अब से हम पवित्रशास्त्र के अनुसार एक-एक करके देखेंगे कि हमारे जीवन में विशेष रूप से किन बातों को रिक्त करने की आवश्यकता है। मसीह के स्वयं को रिक्त करने का अनुसरण करते हुए हम परमेश्वर के वचन के सामने अपने जीवन की जाँच करेंगे और एक-एक करके देखेंगे कि हमें किन बातों से स्वयं को रिक्त करना है। अंततः हमारा हर रिक्त होना मसीह के मन को धारण करने के लिए होना चाहिए।

अध्याय 2:

एक मसीही के लिए स्वयं को रिक्त करने का क्या अर्थ है?

अध्याय 1 में हमने यीशु मसीह के देहधारण और स्वयं को रिक्त करने, अर्थात् **Kenosis**, के अर्थ को देखा। यीशु ने स्वयं को रिक्त किया, इसका अर्थ यह नहीं कि उन्होंने अपनी दिव्यता छोड़ दी। बल्कि परमेश्वर के पुत्र के रूप में जो महिमा और अधिकार उनके थे, उन्हें उन्होंने अपने लाभ के लिए पकड़े नहीं रखा, बल्कि दास का स्वरूप धारण करके स्वयं को नम्र किया। और उनका यह रिक्त होना क्रूस की मृत्यु और आज्ञाकारिता में पूर्ण हुआ। अब हमें पूछना चाहिए: **यीशु के शिष्यों के रूप में हमें स्वयं को कैसे रिक्त करना चाहिए?** मसीही का स्वयं को रिक्त करना केवल कुछ त्यागने का धार्मिक संकल्प नहीं है। केवल एक लालसा को छोड़ देना, अपनी किसी योजना को त्याग देना, या अपनी संपत्ति का कुछ भाग बाँट देना ही पूर्ण रिक्तता नहीं है। मसीही का स्वयं को रिक्त करना ऐसा जीवन है जिसमें मैं स्वीकार करता हूँ कि मेरे जीवन का स्वामी मैं नहीं, परमेश्वर हूँ, और स्वयं को परमेश्वर की इच्छा के लिए समर्पित करता हूँ। पौलुस अपने जीवन में इस रिक्तता को दिखाता है। फिलिप्पियों 2:17 में वह कहता है: “और यदि मुझे तुम्हारे विश्वास के बलिदान और सेवा के साथ अर्घ के समान उंडेला भी जाए, तो भी मैं आनन्दित हूँ और तुम सब के साथ आनन्द करता हूँ।” यहाँ “अर्घ” पुराने नियम की उस बलिदान-विधि को दर्शाता है जिसमें बलिदान के ऊपर दाखरस उंडेला जाता था। पौलुस कहता है कि यदि उसका जीवन और सेवकाई भी परमेश्वर को अर्पित हो जाए, तो वह इसे आनन्द मानेगा। यह स्वीकारोक्ति दिखाती है कि मसीही का स्वयं को रिक्त करना कहाँ तक जाना चाहिए। इसका अंत केवल थोड़ा कम रखने में नहीं, बल्कि स्वयं को परमेश्वर को अर्पित करने में होता है।

मसीही का स्वयं को रिक्त करना अपने जीवन का स्वामी स्वयं बनने की इच्छा को रिक्त करना है

जीवन में हम लगातार अपने जीवन के स्वामी बनने का प्रयास करते हैं। हम स्वयं योजना बनाना, निर्णय लेना, नियंत्रण रखना और सब कुछ अपनी इच्छा के अनुसार होते देखना चाहते हैं। इसलिए परमेश्वर से प्रार्थना करते समय भी हम कई बार वास्तव में अपनी ही इच्छा पूरी होने की माँग करते हैं। लेकिन मसीही का रिक्त होना यहीं से आरंभ होता है: **“मेरा जीवन मेरा नहीं, परमेश्वर का है।”** इस स्वीकारोक्ति को वास्तविक जीवन बनना चाहिए। मेरी इच्छा पूरी न होने पर भी मुझे परमेश्वर पर भरोसा करना चाहिए। मेरी योजना से अलग मार्ग खुलने पर भी मुझे प्रभु की इच्छा पूछनी चाहिए। हानि होने पर भी मुझे ईमानदारी चुननी चाहिए। यदि मुझे लगता है कि मैं सही हूँ, तब भी परमेश्वर के वचन के सामने मुझे फिर से स्वयं को जाँचना चाहिए। यही अपनी प्रभुता को रिक्त करना है। रिक्त होना कुछ न करना नहीं है। बल्कि परमेश्वर की इच्छा के अनुसार सक्रिय रूप से जीना है। हमारी प्रार्थना: “प्रभु, मेरी इच्छा के अनुसार सब कुछ कीजिए,” से बदलकर: “प्रभु, मेरी इच्छा से बढ़कर आपकी इच्छा पूरी हो,” हो जाती है।

मसीही का स्वयं को रिक्त करना अपने भीतर के पाप और इच्छाओं को ईमानदारी से रिक्त करना है

जब हम स्वयं अपने जीवन के स्वामी बनने की इच्छा को रिक्त करना शुरू करते हैं, तब हमें दिखाई देने लगता है कि हमारे भीतर वास्तव में क्या बैठा हुआ है। घमंड हो सकता है। लोभ हो सकता है। मान्यता पाने की लालसा हो सकती है। दूसरों के सामने अच्छा व्यक्ति दिखाई देने की इच्छा हो सकती है। अपने आपको सही सिद्ध करने की हठ हो सकती है। बाहर से हम बहुत धार्मिक और विश्वासयोग्य दिखाई दें, फिर भी ये इच्छाएँ हमारे हृदय की गहराई में बनी रह सकती हैं। इसलिए मसीही का स्वयं को रिक्त करना प्रतिदिन अपने हृदय को परमेश्वर के वचन के सामने रखना है। “प्रभु, मेरे भीतर अभी क्या शेष है?” “मैं किस चीज़ को पकड़े हुए हूँ?” “मैं किस कारण क्रोधित हो रहा हूँ?” “मुझे क्या खोने का भय है?” “लोगों की स्वीकृति पाने के लिए मैं क्या कर रहा हूँ?” इन प्रश्नों के सामने हमें ईमानदार होना चाहिए। और परमेश्वर जो कुछ दिखाते हैं, उसे स्वीकार करके पश्चाताप करना चाहिए। रिक्त होना अपने भीतर के पाप को छिपाने से नहीं, बल्कि परमेश्वर के सामने प्रकट करने से आरंभ होता है। यदि घमंड दिखाई दे, तो उसे परमेश्वर के सामने प्रकट करके उससे स्वयं को रिक्त करें। यदि लोभ दिखाई दे, तो उसे स्वीकार करके उससे स्वयं को रिक्त करें। यदि घृणा दिखाई दे, तो उसे छिपाएँ नहीं, बल्कि उससे स्वयं को रिक्त करें। यदि पाखंड दिखाई दे, तो उसका मुखौटा उतारकर उससे स्वयं को रिक्त करें। इन विशिष्ट क्षेत्रों को हम अध्याय 4 से 12 में एक-एक करके देखेंगे।

मसीही का स्वयं को रिक्त करना रिक्त स्थान को मसीह से भरना है

लेकिन यहाँ हमें एक अत्यंत महत्वपूर्ण सत्य नहीं भूलना चाहिए। रिक्त होना अपने आप में लक्ष्य नहीं है। हम अपने हृदय से एक लोभ निकाल सकते हैं और उसकी जगह दूसरा लोभ भर सकता है। हम सोच सकते हैं कि हमने घमंड को निकाल दिया है, पर फिर यह घमंड पैदा हो सकता है कि “मैं घमंडी नहीं हूँ।” इसलिए बाइबल का रिक्त होना केवल हृदय को खाली छोड़ देना नहीं है। रिक्त स्थान को मसीह से भरना है। मसीही रिक्तता का अर्थ हृदय को खाली अवस्था में छोड़ना नहीं, बल्कि रिक्त स्थान को मसीह के मन से भरते जाना है। अंततः मसीही का रिक्त होना मसीह के समान बनने की प्रक्रिया है। इसलिए पौलुस फिलिप्पियों 2:5 में कहता है: “जैसा मसीह यीशु का स्वभाव था वैसा ही तुम्हारा भी स्वभाव हो।” हम स्वयं को केवल एक “अच्छा व्यक्ति” बनने के लिए रिक्त नहीं करते। हम ऐसा इसलिए करते हैं कि मसीह का मन हमारे भीतर स्थान पाए।

मसीही का स्वयं को रिक्त करना आत्म-त्याग में प्रकट होता है

यीशु ने अपने शिष्यों से मसीही जीवन के बारे में बहुत स्पष्ट रूप से कहा: “यदि कोई मेरे पीछे आना चाहे, तो अपने आप का इन्कार करे और अपना क्रूस उठाए और मेरे पीछे हो ले” (मत्ती 16:24)। अपने आप का इन्कार करने का अर्थ अपने अस्तित्व को नकारना या स्वयं से घृणा करना नहीं है। इसका अर्थ है अपने जीवन का अंतिम स्वामी स्वयं बनने की इच्छा को रिक्त करना। अपनी इच्छा से पहले प्रभु की इच्छा को रखना। अपनी सुविधा से बढ़कर प्रेम को चुनना। अपने अधिकार से बढ़कर सेवा को चुनना। अपने अभिमान से बढ़कर मेल-मिलाप को चुनना। अपने लाभ से बढ़कर सत्य को चुनना। यही आत्म-त्याग है। इसलिए आत्म-त्याग एक भावनात्मक निर्णय से समाप्त नहीं होता। यह प्रतिदिन के चुनावों में पूरा होता है। आज मैं अपनी इच्छा चुनूँगा या परमेश्वर की इच्छा? आज मैं अपने अधिकार पर जोर दूँगा या प्रेम से सेवा करूँगा? आज मैं स्वयं को ऊँचा करूँगा या दूसरे को प्रोत्साहित और उन्नत करूँगा? ये छोटे-छोटे चुनाव मिलकर मसीही के रिक्त जीवन को बनाते हैं।

परिवार में स्वयं को रिक्त करना

तो यह रिक्तता कहाँ से शुरू होनी चाहिए? सबसे निकट के स्थान से। अर्थात् **परिवार से**। परिवार में अपने वास्तविक स्वरूप को छिपाना कठिन है, क्योंकि जीवनसाथी और बच्चे हमें सबसे निकट से देखते हैं। इसलिए परिवार में रिक्तता अत्यंत व्यावहारिक होनी चाहिए। जीवनसाथी से पहले मुझे समझने की प्रतीक्षा करने के बजाय मुझे पहले उसे समझने का प्रयास करना चाहिए। दूसरे व्यक्ति से पहले क्षमा माँगने की प्रतीक्षा करने के बजाय मुझे पहले मेल-मिलाप का हाथ बढ़ाना चाहिए। केवल “मैं सही हूँ” इस विचार को पकड़े रहने के बजाय मुझे दूसरे की बात पूरी सुननी चाहिए। अतीत की गलतियों को एक-एक करके निकालकर दूसरे पर हमला करने के बजाय मुझे क्षमा करके फिर से आरंभ

करना चाहिए। अपने बच्चों के भविष्य को अपने सम्मान और सफलता का साधन समझने के बजाय उन्हें परमेश्वर को सौंपकर प्रेम से उनका पालन-पोषण करना चाहिए। यही परिवार में स्वयं को रिक्त करना है। विशेषकर पति-पत्नी को अपने अधिकारों पर जोर देने के बजाय मसीह के प्रेम के अनुसार एक-दूसरे से प्रेम और सम्मान करना चाहिए (इफिसियों 5:25, 33)। परिवार में मुझे सबसे पहले दूसरे व्यक्ति को नहीं, बल्कि स्वयं को रिक्त करना है।

कलीसिया में स्वयं को रिक्त करना

कलीसिया में भी रिक्तता बहुत व्यावहारिक रूप से दिखाई देनी चाहिए। जब हमें कलीसिया में कोई जिम्मेदारी मिलती है, तो लोगों से मान्यता पाने की इच्छा उत्पन्न हो सकती है। हम चाहते हैं कि लोग हमारे किए हुए काम को पहचानें और स्वीकार करें कि हम सही हैं। लेकिन प्रभु की कलीसिया में महत्वपूर्ण यह नहीं कि मैं कितना ऊँचा उठा हूँ, बल्कि यह कि मैंने दूसरों को कितना उन्नत किया है। यीशु ने कहा: “यदि कोई पहला होना चाहे, तो सब से पीछे और सब का सेवक बने” (मरकुस 9:35)। कलीसिया में स्वयं को रिक्त करने का अर्थ अपनी जिम्मेदारी या पद को छोड़ना नहीं है। बल्कि अपने पद को स्वयं को ऊँचा करने का स्थान नहीं, सेवा करने का स्थान समझना है। प्रशंसा मिलने पर परमेश्वर को महिमा देना; अपने विचार से अलग मत को भी नम्रता से सुनना; कोई न पहचाने तब भी आवश्यक कार्य चुपचाप करना; और दूसरे की वृद्धि के लिए स्वेच्छा से अपना स्थान देना।

कलीसिया का स्वामी मैं नहीं हूँ। कलीसिया के एकमात्र प्रभु यीशु मसीह हैं।

इसलिए अपने पद, अनुभव या ज्ञान से स्वयं को ऊँचा करने के बजाय हमें मसीह की देह को बनाने के लिए स्वयं को नम्र करना चाहिए।

कार्यस्थल में स्वयं को रिक्त करना

कार्यस्थल भी एक महत्वपूर्ण स्थान है जहाँ मसीही की रिक्तता परखी जाती है। हम काम पर मान्यता चाहते हैं। पदोन्नति चाहते हैं। अधिक पारिश्रमिक चाहते हैं। कभी-कभी हम सोच सकते हैं कि किसी प्रतियोगी को हराने के लिए थोड़ी चालाकी या अतिशयोक्ति ठीक है। लेकिन मसीही का रिक्त होना कार्यस्थल पर भी ईमानदारी चुनना है। केवल अधिकारी के देखते समय मेहनत न करें; जहाँ कोई नहीं देखता वहाँ भी विश्वासयोग्य रहें। अपने लाभ के लिए दूसरों का उपयोग न करें। प्रतियोगी को गिराने के लिए झूठ न बोलें और न उसकी निंदा करें। कंपनी की वस्तुओं, समय या संसाधनों को अपना

समझकर दुरुपयोग न करें। अन्यायपूर्ण परिस्थिति में भी बुराई का बदला बुराई से न दें। क्यों? क्योंकि हमारा अंतिम स्वामी कोई मनुष्य नहीं, परमेश्वर हैं। इफिसियों 6:7 कहता है: “मनुष्यों की नहीं, परन्तु प्रभु की जानकर सच्चे मन से सेवा करो।” कार्यस्थल में रिक्त होने का अर्थ लोगों की निगाह के अनुसार जीने वाले अपने स्वभाव को रिक्त करके परमेश्वर की दृष्टि के सामने ईमानदारी से जीना है।

रिक्तता सेवा में प्रकट होती है

अब यह स्पष्ट हो जाता है कि मसीही का रिक्त होना किस दिशा में जाता है। रिक्त होना स्वाभाविक रूप से सेवा के जीवन की ओर ले जाता है। यीशु अपने स्वयं को रिक्त करने के द्वारा दास बने और दास बनकर उन्होंने हमारी सेवा की। मत्ती 20:27-28 में प्रभु ने कहा: “और जो तुम में प्रधान होना चाहे, वह तुम्हारा दास बने; जैसे मनुष्य का पुत्र इसलिए नहीं आया कि उसकी सेवा टहल की जाए, परन्तु इसलिए आया कि आप सेवा टहल करे, और बहुतांश की छुड़ौती के लिए अपने प्राण दे।” यीशु का रिक्त होना क्रूस की ओर बढ़ा। और उस क्रूस पर प्रभु ने हमारे लिए अपना जीवन दे दिया। इसलिए मसीही का रिक्त होना दूसरों से प्रेम करने और उन्हें उन्नत करने वाले जीवन में प्रकट होना चाहिए। जब मैं स्वयं केंद्र बनने की इच्छा को रिक्त करता हूँ, तभी मैं दूसरों की आवश्यकताओं को देख सकता हूँ और प्रेम से उनकी सेवा कर सकता हूँ। इस प्रकार रिक्तता प्रेम को संभव बनाती है, और प्रेम सेवा में प्रकट होता है।

प्रतिदिन “रिक्त होने” का अभ्यास करने के तीन तरीके

तो हम अपने जीवन में रिक्त होने का अभ्यास कैसे करें? प्रतिदिन स्वयं से तीन प्रश्न पूछें।

पहला, आज मैं किस चीज़ को पकड़े हुए हूँ?

देखें कि आप किस बात से अत्यधिक चिपके हुए हैं। यह धन हो सकता है। सम्मान हो सकता है। लोगों की स्वीकृति हो सकती है। आपकी अपनी इच्छा और योजनाएँ हो सकती हैं। अतीत की चोट या शिकायत हो सकती है। उसे परमेश्वर के सामने ईमानदारी से स्वीकार करें और उससे स्वयं को रिक्त करें।

दूसरा, आज मैं क्या चुनूँगा?

रिक्त होना केवल विचारों में समाप्त नहीं होता। क्रोधित होने पर मैं कैसे बोलूँगा? हानि होने पर कैसे व्यवहार करूँगा? जो मुझे मान्यता नहीं देता, उसके साथ कैसा व्यवहार करूँगा? जो मुझसे असहमत है, उसे कैसे स्वीकार करूँगा? इन्हीं क्षणों में आत्म-त्याग वास्तविक रूप से दिखाई देता है। अपनी भावनाओं के मार्ग के बजाय परमेश्वर के वचन का मार्ग चुनें।

तीसरा, रिक्त स्थान को किससे भरूँगा?

रिक्त करके वहीं न रुकें। रिक्त करके वहीं न रुकें। रिक्त स्थान को मसीह के वचन और मसीह के मन से भरें। और सबसे बढ़कर मसीह के मन को चुनें। जब रिक्त होना और भरना इस प्रकार साथ-साथ चलते हैं, तब हमारा विश्वास केवल आत्म-अनुशासन से आगे बढ़कर मसीह के समान बनने वाले शिष्यत्व का मार्ग बन जाता है।

रिक्त होना सेवा के जीवन की ओर ले जाता है

मसीही का स्वयं को रिक्त करना केवल अपनी वस्तुओं को छोड़ना नहीं है। यह स्वीकार करना है कि मैं अपने जीवन का स्वामी नहीं हूँ। अपनी इच्छा को रिक्त करके परमेश्वर की इच्छा चुनना। अपने लोभ को रिक्त करके प्रेम चुनना। अपने अधिकारों को रिक्त करके सेवा चुनना। अपने घमंड को रिक्त करके मसीह को ऊँचा करना। और रिक्त स्थान को परमेश्वर के वचन और मसीह के मन से भरना। जैसे यीशु ने स्वयं को नम्र करके दास का स्वरूप धारण किया, वैसे ही हमें भी प्रतिदिन के जीवन में स्वयं को नम्र करके अपने पड़ोसियों की प्रेम से सेवा करनी चाहिए। इसलिए मसीही के स्वयं को रिक्त करने को एक वाक्य में इस प्रकार कहा जा सकता है: **“अपने जीवन का स्वामी स्वयं बनने की इच्छा को रिक्त करके स्वयं को परमेश्वर को समर्पित करना, ताकि मसीह मेरे जीवन के प्रभु बनें।”** और यह रिक्तता अनिवार्य रूप से अगले कदम की ओर बढ़ती है। **जो स्वयं को रिक्त करता है, वह सेवा करने वाला व्यक्ति बन जाता है।** यदि यीशु ने स्वयं को रिक्त करके दास का रूप लिया, तो उनका अनुसरण करने वाले हमें भी स्वयं को रिक्त करके अपने पड़ोसियों की सेवा करने के स्थान की ओर बढ़ना चाहिए।

अध्याय 3:

स्वयं को रिक्त करके दास के समान अपने पड़ोसी की सेवा करने का क्या अर्थ है?

अध्याय 1 और 2 में हमने देखा कि यीशु मसीह ने स्वयं को रिक्त किया, इसका क्या अर्थ है, और उनका अनुसरण करने वाले मसीही से रिक्त जीवन की क्या माँग की जाती है। अब एक प्रश्न शेष है: **“एक मसीही का स्वयं को रिक्त करना उसके जीवन में कैसे दिखाई देता है?”** बाइबल का उत्तर स्पष्ट है: **जो व्यक्ति स्वयं को रिक्त करता है, वह दास बनकर अपने पड़ोसी की सेवा करता है।**

रिक्त होना केवल अपनी लालसाओं को छोड़ देने पर समाप्त नहीं होता। जब हम अपने जीवन का स्वामी स्वयं बनने की इच्छा को रिक्त करते हैं और मसीह के मन से भरते हैं, तब हम स्वाभाविक रूप से केवल अपने हित की नहीं, बल्कि दूसरों के हित की भी चिंता करने लगते हैं। इसलिए स्वयं को रिक्त करने वाले जीवन का एक सबसे स्पष्ट फल है—**सेवा**। यीशु मसीह परमेश्वर के स्वरूप में थे, फिर भी उन्होंने स्वयं को रिक्त किया और दास का स्वरूप धारण किया (फिलिप्पियों 2:6-7)। समस्त सृष्टि के प्रभु सेवा करवाने के लिए नहीं आए, बल्कि सेवा करने और बहुतों की छुड़ौती के लिए अपना जीवन देने आए (मत्ती 20:28)। तो हम, जिन्होंने मसीह के इस आत्म-रिक्तता के अनुग्रह को पाया है, कैसे जिएँ? परिवार में, कलीसिया में, कार्यस्थल में और हमारे सामने आने वाले प्रत्येक पड़ोसी के साथ हमें स्वयं को ऊँचा करने वाला जीवन नहीं, बल्कि स्वयं को रिक्त करके दूसरों की सेवा करने वाला जीवन जीना चाहिए। इसका सबसे स्पष्ट उदाहरण यीशु द्वारा अपने शिष्यों के पैर धोने की घटना में दिखाई देता है।

जो स्वयं को रिक्त करता है, वह स्वयं को नम्र करके सेवा करता है

यूहन्ना 13:14-15 में यीशु अपने शिष्यों से कहते हैं: “यदि मैंने प्रभु और गुरु होकर तुम्हारे पाँव धोए, तो तुम्हें भी एक दूसरे के पाँव धोना चाहिए। क्योंकि मैंने तुम्हें नमूना दिखा दिया है कि जैसा मैंने तुम्हारे साथ किया है, तुम भी वैसा ही किया करो।” यीशु ने केवल शब्दों से सेवा नहीं सिखाई। वे स्वयं उठे, अपना बाहरी वस्त्र उतारा, कमर में अंगोछा बाँधा और अपने शिष्यों के पैर धोए (यूहन्ना 13:4-5)। उस समय लोग चप्पल पहनकर धूल भरे रास्तों पर चलते थे, इसलिए उनके पैरों पर मिट्टी और धूल लगना सामान्य था। इसलिए किसी के पैर धोना सबसे नीची जगह लेकर उसकी सेवा करने का कार्य था। लेकिन यह काम किसने किया? शिष्यों के गुरु और प्रभु यीशु ने। यीशु का अनुसरण करते हुए भी शिष्य अक्सर इस बात पर विवाद करते थे कि उनमें सबसे बड़ा कौन है। परन्तु क्रूस के सामने खड़े यीशु ने स्वयं को ऊँचा करने के बजाय झुककर अपने शिष्यों के पैर धोए। ऐसे शिष्यों के सामने प्रभु ने स्वयं को ऊँचा करने के बजाय अपनी कमर झुकाई।

यही वह रिक्तता है जो यीशु ने हमें दिखाई।

रिक्त होना केवल अपनी संपत्ति या वस्तुओं को छोड़ना नहीं है। यह स्वयं को ऊँचा करने की इच्छा को रिक्त करना है। मान्यता पाने की इच्छा, विशेष सम्मान पाने की इच्छा, अपने परिश्रम की प्रशंसा चाहने की इच्छा और दूसरों से ऊँचा स्थान पाने की इच्छा—इन सबको परमेश्वर के सामने रिक्त करना है। इसलिए नम्रता का अर्थ केवल अपने बारे में कम सोचना नहीं है। सच्ची नम्रता यह है कि हम इस भावना को रिक्त करें कि हमारे साथ विशेष व्यवहार किया जाना चाहिए, और दूसरों के हित के लिए स्वेच्छा से नीचा स्थान चुनें। यीशु प्रभु थे, फिर भी उन्होंने दास का स्थान लिया। उसी प्रकार हमें भी अपने कलीसियाई पद, कार्य-अनुभव, शिक्षा, धन या सामाजिक प्रतिष्ठा के कारण यह नहीं सोचना चाहिए कि हमें दूसरों से अधिक सम्मान मिलना चाहिए। बल्कि हमारे पास जो कुछ है, उसका उपयोग दूसरों की सेवा के लिए होना चाहिए। परिवार, कलीसिया और कार्यस्थल में स्वयं को दिखाने और ऊँचा करने के बजाय हमें दूसरों की आवश्यकताओं और समुदाय के हित के लिए स्वेच्छा से नीचा स्थान चुनना चाहिए।

यही स्वयं को रिक्त करके दास बनने का जीवन है।

जो स्वयं को रिक्त करता है, वह अपने पड़ोसी की गलतियों को ढाँपता है

जब हम यीशु द्वारा शिष्यों के पैर धोने पर मनन करते हैं, तब हमें यह भी सोचना चाहिए कि दूसरों की कमजोरियों और गलतियों के प्रति हमारा व्यवहार कैसा होना चाहिए। जैसे प्रभु ने स्वयं को नम्र करके शिष्यों की सेवा की, वैसे ही जब हम किसी दूसरे की कमजोरी देखते हैं, तो उसे स्वयं को ऊँचा करने के साधन के रूप में उपयोग नहीं

करना चाहिए, बल्कि प्रेम से उस व्यक्ति को स्वीकार करके उसकी पुनर्स्थापना का प्रयास करना चाहिए। हम दूसरों की कमजोरियाँ बहुत आसानी से देख लेते हैं। व्यक्ति जितना निकट होता है, उसकी उतनी ही अधिक कमियाँ हमें दिखाई देती हैं। हम अपने जीवनसाथी की कमियाँ, बच्चों की दुर्बलताएँ, सहकर्मियों की गलतियाँ और कलीसिया के भाई-बहनों की कमजोरियाँ बहुत अच्छी तरह जानते हैं। प्रश्न यह है कि उन कमियों को देखने के बाद हम क्या करते हैं। संसार दूसरों की गलतियाँ उजागर करके स्वयं को ऊँचा करना चाहता है। लेकिन जब एक मसीही किसी की गलती देखता है, तो उसे उसका लाभ नहीं उठाना चाहिए, बल्कि प्रेम से उसे ढाँपना चाहिए। नीतिवचन 17:9 कहता है: “जो अपराध ढाँपता है, वह प्रेम का खोजी है; परन्तु जो बात को बार-बार उठाता है, वह घनिष्ठ मित्रों में फूट डालता है।” गलती को ढाँपने का अर्थ यह नहीं कि हम गलत काम को ऐसा मान लें मानो वह कभी हुआ ही नहीं, या पाप को अनदेखा कर दें। इसका अर्थ है कि किसी की गलती देखने पर हम उसे दूसरों में न फैलाएँ, न उसे दोष लगाने के हथियार के रूप में इस्तेमाल करें, बल्कि प्रेम और सत्य के साथ उस व्यक्ति की पुनर्स्थापना का प्रयास करें। 1 कुरिन्थियों 13:5 में भी कहा गया है कि प्रेम “बुराई का लेखा नहीं रखता।” यहाँ “लेखा रखने” के लिए प्रयुक्त यूनानी शब्द **logizomai** का अर्थ गणना करना या खाते में दर्ज करना भी है। प्रेम दूसरे व्यक्ति की गलतियों को हृदय की खाता-बही में लिखकर नहीं रखता ताकि बाद में उन्हें निकालकर उसके विरुद्ध इस्तेमाल किया जा सके। इसलिए प्रेम में स्वयं को रिक्त करना इन रूपों में दिखाई देता है।

पहला, हम पिछली गलतियों को बार-बार नहीं उठाते

पति-पत्नी के विवाद में बार-बार यह कहकर हमला न करें, “तुमने पहले भी ऐसा ही किया था।” जब कोई सहकर्मी गलती करे, तो कई वर्ष पुरानी गलतियाँ निकालकर उसके वर्तमान को न आँकें। यदि हमने क्षमा कर दिया है, तो उस गलती को दोष की खाता-बही में बार-बार दर्ज नहीं करते रहना चाहिए।

दूसरा, हम बिना प्रमाण दूसरे व्यक्ति की नीयत को बुरा नहीं मानते

हम बहुत आसानी से दूसरों के कार्यों को गलत समझ लेते हैं। “उसने मुझे नीचा दिखाने के लिए ऐसा कहा होगा।” “वह मुझसे नफरत करता है, इसलिए उसने ऐसा किया होगा।” “वह मेरी जगह लेना चाहता है, इसलिए ऐसा कर रहा है।” ऐसे अपृष्ट विचारों के आधार पर यदि हम दूसरे के मन के बारे में निश्चित निष्कर्ष निकालते हैं, तो ऐसी बात को भी अपने मन में पाप बना सकते हैं जो वास्तव में कभी हुई ही नहीं। जो व्यक्ति स्वयं को रिक्त करता है, वह अपने निर्णय को अंतिम और पूर्ण मानदंड नहीं बनाता। वह पहले पूछता है “क्या ऐसा हो सकता है कि मैंने गलत समझा

हो?" और जहाँ संभव हो, वह सीधे बात करता है, तथ्यों की पुष्टि करता है और इस संभावना के लिए खुला रहता है कि दूसरे व्यक्ति की नीयत अच्छी भी हो सकती है।

तीसरा, हम अपने हृदय में घृणा और शिकायत को बढ़ाते नहीं रहते

यदि हम किसी की गलती को मन में बार-बार दोहराते रहें, तो छोटी-सी चोट भी क्रोध और शिकायत में बदल सकती है। इसलिए दूसरे की गलती को पकड़े रखकर घृणा बढ़ाने के बजाय उस विषय को परमेश्वर को सौंपकर प्रेम से व्यवहार करना चाहिए। हम दूसरों की गलतियों को इसलिए ढाँप सकते हैं क्योंकि पहले स्वयं हमें परमेश्वर की क्षमा मिली है। परमेश्वर हमारी सारी कमियों को जानते हुए भी मसीह में हमें क्षमा कर चुके हैं। इसलिए जिसे क्षमा मिली है, वह क्षमा करता है। जिसे अनुग्रह मिला है, वह अनुग्रह दिखाता है। हमें जितनी बड़ी क्षमा मिली है, दूसरों की गलतियों के प्रति हमारा व्यवहार भी उतना ही बदलना चाहिए।

जो स्वयं को रिक्त करता है, वह केवल शब्दों से नहीं, कार्यों से सेवा करता है

अपने शिष्यों के पैर धोने के बाद यीशु ने कहा: "मैंने तुम्हें नमूना दिखा दिया है कि जैसा मैंने तुम्हारे साथ किया है, तुम भी वैसा ही किया करो" (यूहन्ना 13:15)। प्रभु केवल सेवा की व्याख्या करके नहीं रुके। **उन्होंने स्वयं करके दिखाया।** यह आज हमारे लिए भी अत्यंत महत्वपूर्ण सिद्धांत है।

रिक्तता को कार्यों से प्रमाणित होना चाहिए।

1 यूहन्ना 3:18 हमें प्रोत्साहित करता है: "हे बालको, हम वचन और जीभ ही से नहीं, पर काम और सत्य के द्वारा भी प्रेम करें।" उस समय भी ऐसे लोग थे जो शब्दों से कहते थे कि वे भाई-बहनों से प्रेम करते हैं, लेकिन वास्तव में कठिनाई में पड़े भाई-बहनों से मुँह मोड़ लेते थे। यूहन्ना ने ऐसे प्रेम को सच्चा प्रेम नहीं माना। यदि हमें पता है कि किसी को क्या आवश्यकता है और फिर भी हम कुछ नहीं करते, तो केवल यह कहना पर्याप्त नहीं कि हम उससे प्रेम करते हैं (पद 17)। प्रेम को कार्यों में दिखाई देना चाहिए। भूखे को भोजन देना चाहिए। अकेले व्यक्ति के साथ समय बिताना चाहिए। कठिनाई में पड़े व्यक्ति को वास्तविक सहायता देनी चाहिए। जिसे क्षमा करना है, उसे क्षमा करना चाहिए। यदि मुझे पहले क्षमा माँगनी चाहिए, तो मुझे पहले क्षमा माँगनी चाहिए। यदि मैं किसी को सहायता की आवश्यकता में देखूँ तो "कोई और कर देगा" सोचकर आगे नहीं बढ़ जाना चाहिए। यही स्वयं को रिक्त करके दास

के रूप में जीने का ठोस स्वरूप है। याकूब भी कहता है कि कर्मों के बिना विश्वास मरा हुआ है (याकूब 2:17)। यही सिद्धांत प्रेम पर भी लागू होता है।

कर्म के बिना प्रेम हमारे जीवन में प्रेम का फल प्रकट नहीं कर सकता।

चाहे हम कलीसिया में कितने उत्साह से आराधना करें, हमारे पास कितना भी बाइबल ज्ञान हो और हम कितनी भी सुंदर धार्मिक भाषा बोलें, यदि घर में जीवनसाथी की सेवा नहीं करते, कार्यस्थल में सहकर्मियों का ध्यान नहीं रखते और कठिनाई में पड़े पड़ोसी की उपेक्षा करते हैं, तो हमारी रिक्तता अभी जीवन में नहीं उतरी है। यीशु ने अपने शिष्यों के पैर धोए। इसलिए हमें भी पूछना चाहिए: **आज मुझे किसके पैर धोने चाहिए?** इसका अर्थ केवल यह नहीं कि आज हमें सचमुच किसी के पैर धोने हैं। महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि क्या मैं प्रेम के कारण उस काम को करने के लिए तैयार हूँ जिसे मैं नहीं करना चाहता, जिसे कोई पहचानने वाला नहीं है, और जिसे करने की अनुमति मेरा अभिमान नहीं देना चाहता। क्या मैं वह काम पहले कर सकता हूँ जिसे कोई नहीं देखता? यदि दूसरा व्यक्ति पहले मेरे साथ अच्छा व्यवहार न करे, तो भी क्या मैं पहले प्रेम कर सकता हूँ? ऐसे प्रश्नों के सामने हमारी रिक्तता का वास्तविक स्वरूप प्रकट होता है।

रिक्तता अंततः सेवा में प्रकट होती है

अब हम स्पष्ट रूप से देख सकते हैं कि स्वयं को रिक्त करने वाला जीवन किस दिशा में जाता है। यीशु ने स्वयं को रिक्त किया। स्वयं को रिक्त करने वाले प्रभु ने दास का स्वरूप धारण किया। दास बने प्रभु ने अपने शिष्यों के पैर धोए। और उन्होंने शिष्यों से कहा: “जैसा मैंने तुम्हारे साथ किया है, तुम भी वैसा ही करो।” इसलिए मसीही का रिक्त होना कभी केवल अपने लिए किया जाने वाला आत्मिक अभ्यास नहीं है। यह ऐसा जीवन है जिसमें जितना मैं रिक्त होता हूँ, उतना ही दूसरे पुनर्स्थापित होते हैं; जितना मैं स्वयं को नम्र करता हूँ, उतना ही दूसरे उन्नत होते हैं; और जितना मैं सेवा करता हूँ, उतना ही परमेश्वर का प्रेम मेरे पड़ोसी तक बहता है। इसलिए हमें स्वयं से पूछना चाहिए: क्या मैं मान्यता पाने की इच्छा को रिक्त करके उस स्थान पर भी सेवा करता हूँ जहाँ कोई मुझे नहीं देखता? जब मैं किसी की गलती देखता हूँ, तो क्या उसे उजागर करता हूँ या प्रेम से उस व्यक्ति को स्वीकार करता हूँ? क्या मैं केवल शब्दों से प्रेम करता हूँ, या वास्तविक कार्यों से भी? हमें इन प्रश्नों के सामने ईमानदारी से खड़ा होना चाहिए। स्वयं को रिक्त करने का अर्थ यह नहीं कि मैं मिट जाऊँ। न ही इसका अर्थ अपने व्यक्तित्व या जिम्मेदारियों को छोड़ देना है। बल्कि इसका अर्थ है अपने भीतर स्वयं को राजा बनाने की इच्छा को रिक्त करना और उस स्थान पर मसीह के मन

को स्वीकार करना। जो व्यक्ति मसीह के मन से भरा है, उसके जीवन में रिक्तता प्रेम और सेवा के फल के रूप में दिखाई देती है। जब मैं स्वयं केंद्र बनने की इच्छा को रिक्त करता हूँ, तब मैं दूसरों के हित को देख सकता हूँ और स्वेच्छा से उनकी सेवा कर सकता हूँ। यीशु ने हमारी सेवा करने के लिए स्वयं को रिक्त किया। अब हमें भी, जिन्होंने वह अनुग्रह पाया है, स्वयं को ऊँचा करने और स्वयं अपने जीवन के स्वामी बनने की इच्छा को रिक्त करना चाहिए। अपनी इच्छा और हित से पहले परमेश्वर की इच्छा और अपने पड़ोसी के हित को खोजते हुए जीना चाहिए। सच्ची रिक्तता केवल किसी चीज़ को छोड़ देने पर समाप्त नहीं होती। जिस स्थान को हमने रिक्त किया है, उसे मसीह के मन से भरना चाहिए और प्रभु द्वारा दिखाए गए नम्रता और प्रेम के साथ अपने पड़ोसी की सेवा करने वाले जीवन की ओर बढ़ना चाहिए। अंततः मसीही का स्वयं को रिक्त करना स्वयं को मिटाना नहीं है। **यह अपने जीवन का स्वामी स्वयं बनने की इच्छा को रिक्त करना और अपने जीवन का केंद्र मसीह को सौंप देना है।**

भाग 2:
वे बातें जिन्हें हमें अपने भीतर से रिक्त करना है

अध्याय 4:

“घमंड” को रिक्त करना

पिछले अध्यायों में हमने देखा कि यीशु मसीह ने स्वयं को रिक्त करके दास का स्वरूप धारण किया, और उनका अनुसरण करने वाले शिष्यों का रिक्त होना प्रेम और सेवा में प्रकट होना चाहिए। अब हम परमेश्वर के वचन के सामने एक-एक करके उन बातों को देखेंगे जिन्हें हमें अपने भीतर से रिक्त करना है। उनमें पहली है—“घमंड।”

रिक्त होना अपने भीतर के पाप को छिपाना नहीं है। इसकी शुरुआत परमेश्वर के सामने उस पाप को उजागर करने और स्वीकार करने से होती है। जब हम घमंड को पहचानते हैं, तो उसे परमेश्वर के सामने लाकर उससे फिरना चाहिए। सम्मान और मान्यता पाने की इच्छा, दूसरों से ऊँचा बनने की चाह और अपनी सोच को सही सिद्ध करने की जिद—इन सबको वचन के प्रकाश में लाना चाहिए। तभी सच्चा रिक्त होना आरंभ होता है।

मनुष्य के पतित स्वभाव में सबसे गहराई तक जमे पापों में से एक घमंड है। घमंड हमें उस परमेश्वर की कृपा भूलने पर मजबूर करता है जिसने हमें बचाया और उस महिमा को अपने लिए लेने पर उकसाता है जो परमेश्वर की है। परमेश्वर द्वारा दिए गए स्थान और अनुग्रह के लिए धन्यवाद देने के बजाय हम उन्हीं को स्वयं को ऊँचा करने की सीढ़ी बना लेते हैं। यदि हम परिवार, कार्यस्थल और कलीसिया में प्रभु की सेवा करने का दावा करते हुए भी दूसरों से सम्मान की अपेक्षा करते हैं, अपनी इच्छा स्वीकार न होने पर क्रोधित होते हैं, दूसरों की गलतियाँ बड़ी देखते हैं और अपनी नहीं देखते, तो हमें जाँचना चाहिए कि कहीं घमंड हमारे भीतर स्थान तो नहीं बना चुका है। घमंड केवल मजबूत आत्मसम्मान वाले स्वभाव की समस्या नहीं है। यह हृदय की वह दिशा है जो स्वयं को परमेश्वर से आगे रखती है और उस महिमा को लेने का पापपूर्ण प्रयास करती है जो परमेश्वर की है।

घमंड स्वयं को परमेश्वर से ऊँचा करने वाला हृदय है

नीतिवचन 16:5 हमें बताता है कि परमेश्वर घमंडी हृदय से घृणा करता है। घमंड केवल मनुष्यों के बीच व्यवहार की समस्या नहीं, बल्कि परमेश्वर के साथ संबंध को बिगाड़ने वाला पाप है। परमेश्वर स्वामी हैं, पर मैं स्वामी की तरह व्यवहार करता हूँ। जो कुछ मिला है वह परमेश्वर का अनुग्रह है, फिर भी मैं ऐसा गर्व करता हूँ मानो मैंने स्वयं प्राप्त किया हो। परमेश्वर की व्यवस्था के ऊपर अपनी सोच और निर्णय रखना—यही घमंड है। नीतिवचन 16:18 चेतावनी देता है कि विनाश से पहले घमंड और गिरने से पहले अभिमान आता है। इसलिए हमें स्वयं से पूछना चाहिए: क्या मैं लोगों की मान्यता के प्रति अत्यधिक संवेदनशील हूँ? मेरी राय स्वीकार न हो तो क्या मुझे चोट लगती है? दूसरे को मुझसे अधिक मान्यता मिले तो क्या मुझे ईर्ष्या होती है? मेरे परिश्रम को कोई न पहचाने तो क्या मैं दुखी होता हूँ? गलती बताए जाने पर क्या मैं पहले बहाना बनाता हूँ? क्या मैं दूसरों को सिखाना चाहता हूँ, लेकिन स्वयं सीखना नहीं चाहता? इन प्रश्नों से असुविधा हो तो उससे भागना नहीं चाहिए। संभव है परमेश्वर अपने वचन के दर्पण द्वारा हमारे भीतर का घमंड दिखा रहे हों।

घमंड मेरी सोच को परमेश्वर के वचन से ऊपर रखता है

यिर्मयाह 43 में लोगों ने परमेश्वर का स्पष्ट वचन सुनकर भी उसे स्वीकार नहीं किया। उन्होंने अपनी समझ और गणना को परमेश्वर के वचन से ऊपर रखा। आज हम भी ऐसा कर सकते हैं। जब बाइबल या बाइबल पर आधारित सलाह मेरी सोच से टकराती है, तो क्या मैं उसे वचन के सामने जाँचने से पहले ही अस्वीकार कर देता हूँ? नम्र व्यक्ति पहले स्वयं से पूछता है: “प्रभु, मैं क्या गलत देख रहा हूँ?” “मुझे क्या रिक्त करना चाहिए?” “इस वचन के द्वारा आप मेरे भीतर क्या तोड़ना चाहते हैं?” घमंड वचन को अपने अनुकूल बनाता है; नम्रता स्वयं को वचन के अनुकूल बनाती है।

घमंड परमेश्वर के अनुग्रह को छोटा समझता है

गिनती 16 में कोरह ने मूसा और हारून का विरोध किया। कोरह की समस्या यह नहीं थी कि उसे कम अनुग्रह मिला था। समस्या यह थी कि महान अनुग्रह पाने के बाद भी उसने उसे छोटा समझा। घमंड हमें वर्तमान आशीषों को स्वाभाविक अधिकार समझने पर मजबूर करता है। इसलिए घमंड को रिक्त करने की शुरुआत धन्यवाद से होती है: “प्रभु, मेरे पास जो कुछ है, सब अनुग्रह है।” “इस स्थान पर सेवा कर पाना भी अनुग्रह है।” “मेरी योग्यताएँ, अवसर और संबंध सब आपने दिए हैं।”

घमंड समुदाय को नष्ट करता है

कोरह का घमंड केवल व्यक्तिगत असंतोष नहीं रहा। उसने लोगों को इकट्ठा करके मूसा और हारून का विरोध किया। जब घमंड समुदाय में प्रवेश करता है, तो वह गुट बनाता है, संदेह उत्पन्न करता है और शांति नष्ट करता है। इसलिए हमें पूछना चाहिए: “क्या मैं परमेश्वर की महिमा के लिए बोल रहा हूँ, या अपनी इच्छा मनवाने के लिए?” “क्या मैं समुदाय का हित चाहता हूँ या अपना पक्ष बना रहा हूँ?” “क्या मैं सत्य स्थापित करना चाहता हूँ या स्वयं मान्यता चाहता हूँ?”

सफलता में घमंड अधिक आसानी से प्रकट होता है

यहेजकेल 28 बताता है कि सुंदरता, बुद्धि और सफलता यदि परमेश्वर के प्रति धन्यवाद में न बदलें, तो वही अनुग्रह घमंड का साधन बन सकता है। धन और सफलता स्वयं पाप नहीं हैं। समस्या यह भूलना है कि उन्हें किसने दिया। व्यवस्थाविवरण 8:17-18 हमें स्मरण कराता है कि धन प्राप्त करने की शक्ति भी परमेश्वर देते हैं। मैंने मेहनत की—यह सत्य है। मैंने तैयारी की—यह सत्य है। पर जीवन, स्वास्थ्य, बुद्धि और अवसर किसने दिए? परमेश्वर ने। इसलिए जितनी अधिक सफलता मिले, उतना अधिक नम्र होना चाहिए। जितना अधिक मिला है, उतना अधिक सेवा करनी चाहिए।

उज्जियाह शक्तिशाली होने के बाद घमंडी हुआ

2 इतिहास 26 बताता है कि उज्जियाह को अद्भुत सहायता मिली और वह शक्तिशाली हुआ, लेकिन शक्तिशाली होने के बाद उसका हृदय घमंडी हो गया। मनुष्य कमजोरी में परमेश्वर को खोजता है, लेकिन शक्तिशाली होकर सोच सकता है कि अब वह परमेश्वर के बिना भी रह सकता है। व्यवसाय अच्छा चले, सेवकाई बढ़े, लोग प्रशंसा करें, आर्थिक स्थिति सुधरे या प्रभाव बढ़े—ऐसे समय में और अधिक सावधान होना चाहिए। “यह मेरी योग्यता से हुआ।” “मैंने यह कर दिखाया।” “अब मैं स्वयं संभाल सकता हूँ।” यहीं हम परमेश्वर की कृपा को अपनी क्षमता में बदलने लगते हैं।

हिजकियाह अनुग्रह पाने के बाद भी घमंडी हुआ

2 इतिहास 32:24-25 बताता है कि हिजकिय्याह ने परमेश्वर की अद्भुत कृपा का अनुभव किया, फिर भी उसका हृदय घमंडी हो गया। बहुत से आत्मिक अनुभव हमें स्वतः घमंड से मुक्त नहीं करते। जितना अधिक अनुग्रह मिले, उतना अधिक नम्र होना चाहिए। इसीलिए 1 कुरिन्थियों 10:12 चेतावनी देता है कि जो अपने आपको खड़ा समझता है, वह सावधान रहे कि गिर न पड़े।

घमंड की गहराई में “आत्म-धार्मिकता” होती है

घमंड केवल धन और सफलता में नहीं दिखता। इसका अधिक छिपा रूप है—**आत्म-धार्मिकता**। लूका 10:29 में व्यवस्था का ज्ञाता “अपने आप को धर्मी ठहराना” चाहता था। “मैंने इतना किया है।” “मैं दूसरों से अच्छा हूँ।” “मैं उस व्यक्ति जैसा नहीं हूँ।” “मैं बाइबल अधिक जानता हूँ।” “मैं लंबे समय से विश्वासी हूँ।” इन धार्मिक दिखने वाले विचारों के केंद्र में स्वयं को ऊँचा करने की इच्छा हो सकती है। लूका 18 के फरीसी और चुंगी लेने वाले का दृष्टांत यही दिखाता है। फरीसी अपनी धार्मिकता पर गर्व करता था। चुंगी लेने वाला दूर खड़ा होकर कहता था: “हे परमेश्वर, मुझ पापी पर दया कर।” घमंडी व्यक्ति अपनी धार्मिकता पकड़ता है। नम्र व्यक्ति परमेश्वर की दया पकड़ता है।

वचन हमारे घमंड को दिखाने वाला दर्पण है

परमेश्वर का वचन हमारे हृदय का दर्पण है। इसे पढ़ने का उद्देश्य दूसरों की गलतियाँ ढूँढ़ना नहीं है। “यह वचन उस व्यक्ति को सुनना चाहिए।” “हमारी कलीसिया में ऐसा व्यक्ति है।” “मेरे परिवार में ऐसा व्यक्ति है।” ऐसा पढ़ने पर हम अपना घमंड नहीं देख पाएँगे। वचन पहले मुझ पर लागू होना चाहिए: “प्रभु, इस वचन में मैं स्वयं को देखता हूँ।” “प्रभु, मैं ही यह व्यक्ति हूँ।” “मेरे भीतर भी यह घमंड है।” यहीं रिक्त होना आरंभ होता है।

घमंड वाद-विवाद और संघर्ष में प्रकट होता है

1 तीमुथियुस 6:3-5 घमंड को विवाद, ईर्ष्या, झगड़े, निंदा और बुरी शंकाओं से जोड़ता है। घमंडी हृदय को क्षमा माँगना कठिन लगता है। “मैं गलत था।” इतना कहना कठिन होता है क्योंकि हमें लगता है कि इससे हम छोटे हो जाएँगे। पर सुसमाचार हमें छोटा होने का मार्ग सिखाता है क्योंकि यीशु स्वयं नम्र हुए। नम्रता हार नहीं है। नम्रता परमेश्वर की प्रभुता स्वीकार करना है।

कुरिन्थुस की कलीसिया का घमंड उन्हें पाप को पाप समझने से रोकता था

1 कुरिन्थियों 5:1-2 में गंभीर पाप होने के बावजूद वे शोक करने के बजाय घमंडी थे। घमंड केवल पाप करवाता नहीं; वह पाप को पाप समझने की क्षमता भी छीन सकता है। पाप करने के बाद बहाना बनाना, अपनी गलती के बजाय दूसरों की गलती बताना, ताड़ना मिलने पर पश्चाताप के बजाय स्वयं की रक्षा करना—ये सब घमंड के लक्षण हैं। रिक्त होने वाला व्यक्ति अपनी गलती देखकर पहले पश्चाताप करता है। बहाने से पहले पश्चाताप। दूसरों का न्याय करने से पहले स्वयं की जाँच। स्वयं की रक्षा करने से पहले परमेश्वर की दया की खोज।

शाऊल नम्रता से घमंड की ओर बदल गया

1 शमूएल 15:17 में शमूएल ने शाऊल से कहा कि जब वह अपनी दृष्टि में छोटा था, तब परमेश्वर ने उसे इस्राएल का प्रधान बनाया। लेकिन शक्ति मिलने के बाद उसका हृदय बदल गया। आज नम्र होना यह सुनिश्चित नहीं करता कि कल भी हम नम्र होंगे। इसलिए प्रतिदिन स्वयं को जाँचना चाहिए। जब परिस्थितियाँ शाऊल को परमेश्वर के वचन से बड़ी दिखाई देने लगीं, उसने अपने निर्णय को वचन से ऊपर रखा। “स्थिति बहुत जरूरी है।” “मुझे स्वयं निर्णय करना होगा।” “वचन मानने पर नुकसान होगा।” “इस बार अपवाद कर लेते हैं।” यहीं से घमंड शुरू हो सकता है।

शाऊल ने परमेश्वर की महिमा से अधिक अपना नाम ऊँचा किया

1 शमूएल 15:12 में शाऊल ने अपने लिए स्मारक खड़ा किया। यह घमंड का सार है—परमेश्वर के काम को अपना काम बताना, परमेश्वर की कृपा को अपनी क्षमता कहना और परमेश्वर द्वारा दी गई सफलता से अपना नाम ऊँचा करना। अवज्ञा के बाद भी उसने परमेश्वर के सामने सच्चे पश्चाताप से अधिक लोगों के सामने अपना सम्मान बचाने की चिंता की। यही घमंड का अंतिम रूप है: परमेश्वर के सामने गलत होने के बावजूद लोगों के सामने अच्छा दिखना।

घमंड को रिक्त करने का मार्ग पश्चाताप से आरंभ होता है

2 इतिहास 32:26 बताता है कि हिजकियाह ने अपने हृदय के घमंड के लिए पश्चाताप किया। यहीं आशा है। विश्वासी का लक्ष्य यह कहना नहीं कि “मैं अब कभी घमंडी नहीं होता।” बल्कि घमंड दिखते ही उसे परमेश्वर के सामने लाना है। “प्रभु, मैं घमंडी था।” “मैंने अपना नाम ऊँचा किया।” “मैंने लोगों की मान्यता चाही।” “मैंने दूसरों का न्याय किया।” “मैंने आपकी कृपा को अपनी क्षमता समझ लिया।” “गलत होने पर भी मैंने बहाना बनाया।” यहीं से रिक्त होना शुरू होता है।

नम्रता स्वयं को नीचे करके परमेश्वर और पड़ोसी को ऊँचा करने वाला जीवन है

नम्रता स्वयं को तुच्छ समझना नहीं है। यह परमेश्वर को ऊँचा करने और पड़ोसी से प्रेम करने के लिए स्वयं को नीचे करना है। अपने अधिकार से अधिक प्रेम चुनना। सम्मान पाने से अधिक सेवा का अवसर ढूँढ़ना। अपने नाम से अधिक परमेश्वर का नाम ऊँचा करना। अपनी बात सही सिद्ध करने से अधिक समुदाय की शांति चुनना। दूसरे की उन्नति में आनंदित होना। यही मसीह का मन है।

जहाँ प्रेम है वहाँ घमंड नहीं रह सकता

1 कुरिन्थियों 13:4 कहता है कि प्रेम ईर्ष्या नहीं करता, डींग नहीं मारता और घमंड नहीं करता। घमंड कहता है, “मुझे ऊँचा होना चाहिए।” प्रेम कहता है, “मैं चाहता हूँ कि तुम्हारा भला हो।” घमंड कहता है, “मुझे मान्यता चाहिए।” प्रेम कहता है, “परमेश्वर की महिमा हो, यही पर्याप्त है।” घमंड दूसरों को नीचे करके स्वयं को ऊँचा करता है। प्रेम स्वयं को नीचे करके दूसरों का हित चाहता है। इसलिए घमंड को रिक्त करना स्वयं को तुच्छ मानना नहीं, बल्कि **मसीह की नम्रता** धारण करना है। पवित्र आत्मा जब वचन द्वारा हमारे हृदय के घमंड को प्रकाशित करते हैं, तो हमें उसे परमेश्वर के सामने लाकर मसीह की नम्रता से भरने की प्रार्थना करनी चाहिए। घमंड कहता है, “स्वयं को ऊँचा करो।” सुसमाचार कहता है, “मसीह को ऊँचा करो।” घमंड कहता है, “लोग मुझे पहचानें।” सुसमाचार कहता है, “परमेश्वर मुझे जानते हैं—यही पर्याप्त है।” इसलिए प्रतिदिन पूछें: “मैं यह क्यों कह रहा हूँ?” “क्या मैं परमेश्वर की महिमा चाहता हूँ या अपने अहंकार की रक्षा कर रहा हूँ?” “क्या मैं सत्य स्थापित करना चाहता हूँ या स्वयं को सही सिद्ध करना चाहता हूँ?” “क्या मैं दूसरे को उठाने के लिए बोल रहा हूँ या उसकी गलती दिखाकर स्वयं को धर्मी दिखाना चाहता हूँ?” दाऊद की तरह प्रार्थना करें: “हे परमेश्वर, मुझे जाँचकर मेरे हृदय को जान” (भजन 139:23)। घमंड केवल विशेष रूप से अहंकारी लोगों का पाप नहीं है। यह हर उस हृदय में रह सकता है जो स्वयं को केंद्र बनाना चाहता है। इसलिए घमंड को रिक्त करना बाहरी परिस्थितियाँ बदलना नहीं, बल्कि स्वयं स्वामी बनने की इच्छा को

रिक्त करके परमेश्वर को अपने जीवन का स्वामी स्वीकार करना है। सफलता में स्वयं पर गर्व न करना। असफलता में दूसरों को दोष न देना। प्रशंसा में परमेश्वर को महिमा देना। ताड़ना में पहले स्वयं को देखना। दूसरों की गलती पर दया दिखाना। हानि उठाकर भी प्रेम से सेवा का मार्ग खोजना। यही घमंड से रिक्त जीवन का फल है। अंततः घमंड को रिक्त करना अपने भीतर के "मैं" को मिटाना नहीं, बल्कि उस "मैं" को पूरी तरह परमेश्वर को सौंपना और खाली स्थान को मसीह के मन से भरना है। इसलिए प्रार्थना करें: **"प्रभु, स्वयं को सही सिद्ध करने की मेरी इच्छा को रिक्त करें। लोगों से मान्यता पाने की इच्छा को रिक्त करें। अपना नाम ऊँचा करने की इच्छा को रिक्त करें। अपने अधिकारों पर जोर देने की इच्छा को रिक्त करें। और उस रिक्त स्थान को मसीह की नम्रता और प्रेम से भर दें।"** जब यह प्रार्थना हमारा जीवन बनती है, घमंड धीरे-धीरे अपनी शक्ति खोता है और हम यीशु द्वारा दिखाए गए दास के स्थान पर उतरकर अपने जीवन से पड़ोसी की सेवा करने लगते हैं।

“घमंड” को रिक्त करने के सिद्धांत और व्यावहारिक निर्देश

1. घमंड दिखाई देते ही परमेश्वर के सामने पश्चाताप करें।

हिजकिय्याह की तरह स्वीकार करें कि अपनी शक्ति से घमंड नहीं जीत सकते और पवित्र आत्मा से प्रार्थना करें कि वे उसे दिखाएँ और पश्चाताप कराएँ (2 इतिहास 32:26)।

2. जितनी सफलता मिले, अपने नाम के बजाय परमेश्वर को महिमा दें।

शाऊल की तरह अपने लिए स्मारक न बनाएँ। स्वीकार करें कि सब परमेश्वर की कृपा है (1 शमूएल 15:12)।

3. परमेश्वर द्वारा दिए गए स्थान और बुलाहट को धन्यवाद से स्वीकार करें।

कोरह की तरह अपने स्थान को छोटा समझकर ऊँचे स्थान की लालसा न करें। सीखने और सेवा करने वाले बनें (गिनती 16:9)।

4. अपने विश्वास और धार्मिक जीवन को आत्म-धार्मिकता का आधार न बनाएँ।

फरीसी की तरह अपनी धार्मिक उपलब्धियों पर गर्व न करें; चुंगी लेने वाले की तरह परमेश्वर की दया खोजें (लूका 18:13)।

5. ऊँचा स्थान पाने के बजाय नीचे होकर सेवा करने का स्थान चुनें।

परिवार, कलीसिया और कार्यस्थल में वहाँ भी सेवा करें जहाँ कोई पहचान नहीं देता (नीतिवचन 16:19)। हम केवल अपनी इच्छा और प्रयास से घमंड को रिक्त नहीं कर सकते। यहाँ तक कि “मैं अपनी शक्ति से नम्र बनूँगा” भी एक नया घमंड बन सकता है। इसलिए हमें परमेश्वर के अनुग्रह और पवित्र आत्मा की सहायता चाहिए। प्रतिदिन प्रार्थना करें: **“प्रभु, मेरे भीतर का घमंड दिखाएँ और क्रूस के सामने पश्चाताप कराएँ। अपनी शक्ति पर भरोसा न करके पवित्र आत्मा की सहायता माँगना सिखाएँ और स्वयं स्वामी बनने की मेरी इच्छा को रिक्त करें।”** घमंड को रिक्त करना परमेश्वर के अनुग्रह पर निर्भर रहते हुए, उस अनुग्रह के प्रति आज्ञाकारी होकर प्रतिदिन स्वयं को नम्र करने वाला शिष्यत्व का मार्ग है।

अध्याय 5:

“लोभ” को रिक्त करना

पिछले अध्याय में हमने “घमंड” को रिक्त करने के द्वारा उस हृदय को देखा जो स्वयं को परमेश्वर से ऊँचा करना और अपनी इच्छा को पहले रखना चाहता है। अब अध्याय 5 में हम “लोभ” को देखेंगे। घमंड के साथ लोभ भी हमारी आत्मा को गहराई से जकड़ता है, हमें परमेश्वर में संतुष्ट होने से रोकता है और संसार की वस्तुओं को लगातार पकड़ते रहने के लिए प्रेरित करता है।

हमें परमेश्वर के वचन के सामने ईमानदारी से खड़े होकर अपने भीतर बसे लोभ की वास्तविकता का सामना करना और उसे रिक्त करना सीखना चाहिए। एक बड़े अस्पताल के कैंसर केंद्र के पूर्व निदेशक डॉ. ली ही-दे ने कैंसर कोशिकाओं के शारीरिक स्वभाव की तुलना एक आत्मिक सिद्धांत से की थी। सामान्य कोशिकाएँ एक निश्चित व्यवस्था के अनुसार बढ़ती और मरती हैं। परंतु असामान्य आनुवंशिक परिवर्तन होने पर ऐसी विकृत कोशिकाएँ उत्पन्न हो सकती हैं जो मरती नहीं, बल्कि निरंतर बढ़ती रहती हैं। यही कैंसर कोशिकाएँ हैं। कैंसर कोशिकाएँ अपने विस्तार के लिए उन पोषक तत्वों को भी अपने लिए ले लेती हैं जिनकी अन्य सामान्य कोशिकाओं को आवश्यकता होती है। आत्मिक रूप से यह हमें लोभ की याद दिलाता है—वह निरंतर अधिक चाहता है और अंततः अपने आसपास की चीज़ों को भी नष्ट कर देता है। याकूब 1:15 कहता है: “अभिलाषा गर्भवती होकर पाप को जन्म देती है, और पाप बढ़कर मृत्यु को उत्पन्न करता है।” हमें स्वीकार करना चाहिए कि लोभ में एक ऐसी लत जैसी प्रकृति है जिसे संसार की कोई भी संपत्ति कभी पूरी तरह संतुष्ट नहीं कर सकती।

लोभ हमें परमेश्वर द्वारा दिए गए अनुग्रह में संतुष्ट नहीं रहने देता

गिनती 11 में हम इस्राएलियों को देखते हैं जो स्वर्ग से मिलने वाले मन्ना के लिए धन्यवाद देने के बजाय मांस की लालसा करने लगे। दूसरों से प्रभावित होकर उन्होंने भी लालसा की। इसी प्रकार संसार की प्रवृत्तियाँ विश्वासियों

के हृदय में लोभ फैला सकती हैं। वे प्रतिदिन मिलने वाले मन्ना से संतुष्ट नहीं रहे और रोते हुए मूसा से मांस माँगने लगे। उनका विवेक इतना बिगड़ गया कि वे मिस्र की गुलामी को भी याद करने लगे। उन्होंने मछली, खीरे, खरबूजे, लीक, प्याज और लहसुन को याद करके गुलामी के दिनों को अच्छे दिनों के रूप में देखना शुरू कर दिया। परमेश्वर ने उनकी माँग के अनुसार बटेरें भेजीं। परंतु लोभ ने उन्हें संतुष्ट नहीं किया; वह उन्हें न्याय की ओर ले गया। मांस उनके दाँतों के बीच ही था कि परमेश्वर ने उन्हें महामारी से मारा। उस स्थान का नाम **किब्रोथ-हत्तावा**, अर्थात् “लालसा की कब्रें,” पड़ा (गिनती 11:34)। लोभ मनुष्य को संतुष्ट नहीं करता। अंततः वह मनुष्य को निगलने और नष्ट करने वाली मूर्ति बन जाता है।

लोभ हमें दूसरों के अधिकार छीनने तक ले जाता है

लोभ केवल व्यक्तिगत हृदय में नहीं रहता। वह दूसरों के अधिकार और जीवन को भी हानि पहुँचा सकता है। 1 राजा 21 में राजा अहाब ने नाबोत की दाख की बारी चाही। नाबोत ने परमेश्वर की व्यवस्था का पालन करते हुए अपने पूर्वजों की विरासत देने से इनकार किया। अहाब दुखी और क्रोधित होकर घर गया, बिस्तर पर लेट गया और भोजन करने से इनकार कर दिया। जब हमारी इच्छा पूरी न होने पर क्रोध उठता है, हमें जाँचना चाहिए कि कहीं हम लोभ के अधीन तो नहीं हैं। लूका 12:15 में यीशु चेतावनी देते हैं: “सावधान रहो और हर प्रकार के लोभ से अपने आप को बचाए रखो, क्योंकि किसी का जीवन उसकी संपत्ति की बहुतायत से नहीं होता।” यदि लोभ को रिक्त न किया जाए, तो वह परिवार को नष्ट करने वाली त्रासदी का कारण भी बन सकता है।

लोभ परिवार और समुदाय को नष्ट करता है

ईज़ेबेल को अहाब के लोभ को रोकना चाहिए था, पर उसने उसके लोभ का समर्थन किया और नाबोत की दाख की बारी दिलाने का वचन दिया। नीतिवचन 14:1 कहता है: “बुद्धिमान स्त्री अपने घर को बनाती है, पर मूर्ख स्त्री अपने ही हाथों से उसे ढा देती है।” ईज़ेबेल ने झूठे गवाह खड़े करके नाबोत पर परमेश्वर और राजा को शाप देने का झूठा आरोप लगवाया और अंततः उसे पत्थरों से मरवा दिया। लोभ केवल “और अधिक पाने” की इच्छा नहीं रहता। अनियंत्रित लोभ दूसरों के अधिकार, प्रतिष्ठा और संपत्ति छीन सकता है और यहाँ तक कि जीवन भी ले सकता है। आज कार्यस्थल में भी यदि अधिक आय या पद के लिए हम ईमानदार सहकर्मी को बदनाम या बाहर करते हैं, तो हमें जाँचना चाहिए कि कहीं अहाब और ईज़ेबेल का लोभ हमारे भीतर तो नहीं बढ़ रहा है।

लोभ संतोष छीनता और शिकायत उत्पन्न करता है

सभोपदेशक 7:7 चेतावनी देता है कि लोभ बुद्धिमान व्यक्ति को भी मूर्ख बना सकता है। लोभी व्यक्ति अपनी इच्छा पूरी न होने पर अधीर और क्रोधित हो जाता है। सभोपदेशक 7:8-9 हमें धैर्य रखने और शीघ्र क्रोधित न होने की शिक्षा देता है। जो सच्चे रिक्त होने को भूल जाता है, वह परमेश्वर के कार्य की प्रतीक्षा करने के बजाय तुरंत अपनी इच्छा पूरी करना चाहता है। सभोपदेशक 7:10 हमें पुराने दिनों को आज से बेहतर बताकर लगातार शिकायत करने से रोकता है। लोभ से नियंत्रित व्यक्ति कहता रहता है: “मेरी वर्तमान स्थिति पहले से इतनी खराब क्यों है?” वह आज घर और कार्यस्थल में मिले अनुग्रह के लिए धन्यवाद देने के बजाय केवल पुराने अच्छे दिनों को याद करता है। यह बाइबल की सच्ची बुद्धि नहीं है।

धर्म का मुखौटा पहने हुए लोभ

मसीही विश्वास में लोभ का सबसे कुरूप और चालाक रूप वह है जिसमें व्यक्ति बाहर से परमेश्वर की सेवा करने वाला धार्मिक व्यक्ति दिखाई देता है, लेकिन भीतर धन की पूजा करता है। लूका 16:14-15 फरीसियों को **धन से प्रेम करने वाले** लोगों के रूप में दिखाता है। वे बाहर से व्यवस्था का पालन करते दिखाई देते थे, पर भीतर धन से प्रेम करते थे और लोगों के सामने अपने आपको धर्मी दिखाना चाहते थे। आज भी भौतिक सफलता को परमेश्वर की आशीष के समान मानकर लोभ को विश्वास के नाम पर उचित ठहराने का खतरा है। कलीसिया की बाहरी वृद्धि या आर्थिक समृद्धि अपने आप परमेश्वर के अनुग्रह को सिद्ध नहीं करती। धनवान या सामाजिक रूप से प्रभावशाली व्यक्ति को केवल इसी कारण विशेष आत्मिक अधिकार भी नहीं मिलना चाहिए। कलीसिया को धन और सामाजिक प्रतिष्ठा से अधिक विश्वास, चरित्र और सेवा के फल को महत्व देना चाहिए। हमें जाँचना चाहिए कि “परमेश्वर का अनुग्रह,” “प्रार्थना का उत्तर” या “कलीसिया की वृद्धि” जैसे आत्मिक शब्दों के पीछे धन और शक्ति की लालसा तो नहीं छिपी है। यशायाह 56:11 उन चरवाहों को कठोर चेतावनी देता है जो **कभी संतुष्ट नहीं होते** और अपना लाभ खोजते हैं। यदि पास्टर और कलीसिया के अगुवे परमेश्वर की भेड़ों की सेवा करने के बजाय अपनी संपत्ति बढ़ाने में लग जाएँ, तो वे अपनी बुलाहट से भटक जाते हैं। लूका 11:39 में यीशु फरीसियों को बाहर से पात्र साफ करने परंतु भीतर लोभ और दुष्टता से भरे होने के लिए डाँटते हैं।

“Harpagē” में निहित लोभ का अर्थ

लूका 11:39 में “लोभ” के लिए प्रयुक्त यूनानी शब्द **harpagē (ἄρπαγή)** है। इसका अर्थ केवल अधिक पाने की इच्छा नहीं, बल्कि दूसरे की वस्तु छीनना या उसका शोषण करके उसे अपना बना लेना भी है। इसलिए यीशु जिस लोभ की निंदा करते हैं, वह केवल “मैं थोड़ा और चाहता हूँ” तक सीमित नहीं है। लोभ बढ़ने पर हम अपने लाभ के लिए दूसरों के अधिकार और संपत्ति छीन सकते हैं। बाहर से धार्मिक दिखाई देकर अपने लाभ के लिए दूसरों का उपयोग करना वही धार्मिक लोभ है जिसके विरुद्ध प्रभु ने चेतावनी दी। पास्टर्स और कलीसिया के अगुवों के लिए यह विशेष रूप से खतरनाक है। होठों से परमेश्वर से प्रेम कहकर भी जीवन में धन पर परमेश्वर से अधिक भरोसा किया जा सकता है। भजन 18:1 का प्रचार करते हुए, “हे यहोवा, मेरे बल, मैं तुझ से प्रेम करता हूँ,” यदि हम धन को अपनी शक्ति, सुरक्षा और भविष्य मानते हैं, तो हमें अपने हृदय को वचन के सामने जाँचना चाहिए। सच्चा पश्चाताप केवल शब्दों में समाप्त नहीं होता। यूहन्ना बपतिस्मा देने वाले ने कहा, “मन फिराव के योग्य फल लाओ” (मत्ती 3:8)। लोभ से पश्चाताप अन्यायपूर्ण लाभ को अस्वीकार करने, धन का ईमानदारी से उपयोग करने और परमेश्वर द्वारा दी गई वस्तुओं को दूसरों के साथ बाँटने में दिखाई देना चाहिए। लूका 16:14 में “धन से प्रेम करने वाले” के लिए यूनानी शब्द **philargyroi (φιλάργυροι)** है, जिसका शाब्दिक अर्थ है “**धन से प्रेम करने वाले लोग।**” इससे हमारे सामने प्रश्न आता है: **क्या मैं वास्तव में परमेश्वर से प्रेम करता हूँ?** या परमेश्वर पर विश्वास कहने के बावजूद मैं धन से मिलने वाली सुरक्षा और शक्ति पर अधिक भरोसा करता हूँ? भजन 119:11, 36-37 हमें अपने हृदय को परमेश्वर के वचन की ओर और लोभ से दूर करने की प्रार्थना सिखाता है। लोभ को रिक्त करना केवल कम धन रखने की बात नहीं है। यह अपने हृदय और दृष्टि को फिर परमेश्वर की ओर मोड़ना है। 1 तीमुथियुस 6:10 चेतावनी देता है कि **धन का प्रेम** सब प्रकार की बुराइयों की जड़ है। समस्या धन नहीं, धन से प्रेम है। धन जब साधन के स्थान से उठकर स्वामी बन जाता है, तब वह हमारे हृदय पर शासन करने लगता है। लोभ कहता है: “बस थोड़ा और मिल जाए, फिर संतुष्ट हो जाऊँगा।” लेकिन लोभ का अंत नहीं है। जितना अधिक मिलता है, उतना अधिक चाहिए। इसलिए लोभ को रिक्त किए बिना वास्तविक संतोष नहीं मिलता।

समृद्धि में भी लोभ से सावधान रहना चाहिए

कठिनाई में हम परमेश्वर को अधिक खोज सकते हैं। लेकिन समृद्धि में भी विश्वास की परीक्षा होती है। आय बढ़ने पर हम भूल सकते हैं कि सब परमेश्वर की कृपा है और अपनी योग्यता तथा धन पर भरोसा करने लगते हैं। समृद्धि स्वयं पाप नहीं है। भौतिक आशीष के लिए भी धन्यवाद देना चाहिए। परंतु यदि समृद्धि हमें परमेश्वर से दूर करके अधिक पकड़ने की इच्छा उत्पन्न करे, तो वही समृद्धि आत्मा के लिए खतरा बन सकती है। धन जीवन का उद्देश्य नहीं है। वह परमेश्वर द्वारा दिया गया साधन है जिससे हम आवश्यकताएँ पूरी करें, परिवार की देखभाल करें, पड़ोसी से प्रेम करें और सुसमाचार के मिशन को पूरा करें। समस्या तब शुरू होती है जब धन साधन से स्वामी बन

जाता है। लूका 16:9 में यीशु हमें धन का सही उपयोग करना सिखाते हैं। महत्वपूर्ण प्रश्न यह नहीं कि हमारे पास कितना है, बल्कि यह है कि परमेश्वर द्वारा दी गई वस्तुओं को हम किसके लिए और किस उद्देश्य से उपयोग कर रहे हैं।

लोभ को रिक्त करके संतोष सीखना चाहिए

संसार कहता है कि अधिक पाने पर हम खुश होंगे, दूसरों से अधिक रखने पर सुरक्षित होंगे और अधिक जमा करने पर भविष्य सुरक्षित होगा। हमें इस आवाज को अपने हृदय पर शासन नहीं करने देना चाहिए। यीशु ने स्वयं को रिक्त करके मृत्यु तक आज्ञाकारिता दिखाई। उसी प्रकार हमें अधिक पाने की इच्छा और स्वयं स्वामी बनने की इच्छा को प्रतिदिन रिक्त करना चाहिए। और रिक्त हृदय को मसीह से भरना चाहिए। हमें संसार की संपत्ति में नहीं, यीशु मसीह में संतोष सीखना चाहिए। रोमियों 6:23 में दिए गए अनन्त जीवन के वरदान और रोमियों 8:38-39 में बताए गए अविच्छिन्न प्रेम को याद रखना चाहिए। लोभ को रिक्त करना धन फेंक देना नहीं है। यह धन को अपने हृदय का स्वामी न बनने देना और परमेश्वर को जीवन का प्रभु स्वीकार करना है। लोभ कहता है: **“और चाहिए।”** विश्वास कहता है: **“मसीह में मेरे पास पहले ही पर्याप्त है।”** यही घर, कार्यस्थल और कलीसिया में प्रतिदिन **लोभ को रिक्त करने** का मार्ग है।

“लोभ” को रिक्त करने के सिद्धांत और व्यावहारिक निर्देश

1. परमेश्वर द्वारा दिए गए में संतोष सीखें।

लोभ कहता है: “थोड़ा और मिल जाए तो संतुष्ट हो जाऊँगा।” लेकिन अधिक संपत्ति आवश्यक रूप से अधिक संतोष नहीं देती। यह सोचने से पहले कि “मेरे पास पर्याप्त नहीं है,” पूछें: “परमेश्वर ने मुझे पहले ही कितना अनुग्रह दिया है?” संतोष का अर्थ कोई इच्छा न होना नहीं, बल्कि परमेश्वर द्वारा दिए गए के लिए धन्यवाद देते हुए अधिक पाने की इच्छा को अपना स्वामी न बनने देना है।

2. पकड़ने के बजाय बाँटने और देने का अभ्यास करें।

लोभ हाथ बंद करता है; प्रेम हाथ खोलता है। धन का उपयोग केवल अपने आनंद के लिए न करें, बल्कि परिवार की देखभाल, पड़ोसी से प्रेम और जरूरतमंद की सहायता के लिए करें। दशमांश, दान और बाँटना इस अभ्यास का हिस्सा हो सकते हैं। यह केवल पैसा देने की धार्मिक क्रिया नहीं, बल्कि यह स्वीकार करना है कि सब कुछ परमेश्वर का है और हम भंडारी हैं।

3. वचन के सामने प्रतिदिन अपनी इच्छाओं की जाँच करें।

पूछें: “मैं यह अधिक क्यों चाहता हूँ?” “क्या मुझे सच में इसकी आवश्यकता है?” “क्या मैं केवल दूसरों से अधिक चाहता हूँ?” “क्या यह परमेश्वर द्वारा दी गई वस्तु का बुद्धिमानी से उपयोग है या अपनी इच्छा पूरी करना?” खरीदने से पहले प्रतीक्षा करना, अनावश्यक खर्च घटाना, जीवन की अपेक्षाएँ थोड़ी कम करना और जो पहले से है उसका धन्यवादपूर्वक उपयोग करना लोभ को रिक्त करने के व्यावहारिक अभ्यास हैं।

4. धन से संबंधित हर बात में ईमानदारी चुनें।

अधिक लाभ के लिए ईमानदारी न छोड़ें। दूसरों का हिस्सा न छीनें। अन्यायपूर्ण साधनों से लाभ न कमाएँ। आय और खर्च ईमानदारी से संभालें। कलीसिया और सेवकाई में भी परमेश्वर के काम को अपने लाभ या प्रतिष्ठा का साधन न बनाएँ। लोभ से पश्चाताप अन्यायपूर्ण लाभ को अस्वीकार करने, ईमानदारी से काम करने और दूसरों के अधिकारों का सम्मान करने में दिखाई देता है।

5. पहले से मिले अनुग्रह को याद करके धन्यवाद दें।

लोभ उस चीज़ को देखता है जो हमारे पास नहीं है। धन्यवाद उस अनुग्रह को देखता है जो हमें पहले ही मिला है। आर्थिक कठिनाई में भी अब तक मिली कृपा को याद करें। आय बढ़ने पर उसे केवल अपनी योग्यता का परिणाम न समझें। घर में दूसरों से तुलना करने के बजाय परमेश्वर द्वारा दिए गए के लिए धन्यवाद दें। कार्यस्थल में दूसरों के पद और आय देखकर शिकायत करने के बजाय वर्तमान कार्य और अवसर के लिए धन्यवाद दें। परंतु हम अपनी इच्छा और प्रयास से लोभ को पूरी तरह रिक्त नहीं कर सकते। यहाँ तक कि **“मैं अपनी शक्ति से लोभ को जीतूँगा”** भी आत्म-धार्मिकता बन सकती है।

इसलिए हमें परमेश्वर की कृपा और पवित्र आत्मा की सहायता चाहिए। फिर भी इसका अर्थ निष्क्रिय रहना नहीं है। पवित्र आत्मा जब वचन के द्वारा लोभ दिखाएँ, हमें पश्चाताप करना चाहिए। बंद हाथ खोलना चाहिए। अन्यायपूर्ण लाभ अस्वीकार करना चाहिए। जो मिला है बाँटना चाहिए। धन्यवाद और संतोष का अभ्यास करना चाहिए। हम प्रार्थना कर सकते हैं: **“प्रभु, मेरे भीतर के लोभ को दिखाएँ और मुझे पश्चाताप कराएँ। अधिक पाने की इच्छा को मेरे हृदय पर शासन न करने दें और स्वयं स्वामी बनने की इच्छा को रिक्त करें। पहले से मिले अनुग्रह के लिए धन्यवाद और संतोष करना सिखाएँ। आपने जो धन सौंपा है उसका ईमानदारी से उपयोग और प्रसन्नता से बाँटना सिखाएँ। पवित्र आत्मा, धन से अधिक परमेश्वर से प्रेम और संपत्ति से अधिक प्रभु पर भरोसा करना सिखाएँ।”** लोभ को रिक्त करना केवल कम धन रखना नहीं है। यह हृदय में धन द्वारा लिए गए स्थान को परमेश्वर को लौटाना है। यह स्वीकार करना है कि मैं धन का अंतिम स्वामी नहीं, बल्कि परमेश्वर द्वारा सौंपी गई वस्तुओं का भंडारी हूँ। रिक्त होने का उद्देश्य खाली व्यक्ति बनना नहीं है। अधिक पाने की इच्छा को रिक्त करके उस स्थान को मसीह से भरना है। लोभ कहता है: **“और अधिक चाहिए।”** विश्वास कहता है: **“मसीह में पहले ही पर्याप्त है।”** यही घर, कलीसिया और कार्यस्थल में प्रतिदिन **लोभ को रिक्त करने** का मार्ग है।

अध्याय 6:

“पाखंड” से स्वयं को रिक्त करना

पिछले अध्यायों में हमने देखा कि हमें उस घमंड से कैसे स्वयं को रिक्त करना चाहिए जो हमें परमेश्वर से ऊपर उठाना चाहता है, और उस लोभ से कैसे स्वयं को रिक्त करना चाहिए जो परमेश्वर में संतुष्ट नहीं होता और हमेशा अधिक पाने की इच्छा करता है। अब हम एक और गहरे पाप—“पाखंड”—पर विचार करेंगे। पाखंड वह मनोवृत्ति है जिसमें हम लोगों के सामने अपने वास्तविक स्वरूप से अलग रूप दिखाना चाहते हैं। भीतर कुछ और सोचते हैं, पर बाहर ऐसा व्यवहार करते हैं मानो हमारे मन में वैसा कुछ नहीं है। हम परमेश्वर की दृष्टि से अधिक लोगों की राय और मूल्यांकन की चिंता करते हैं और उसी के अनुसार अपने विश्वास को सजाने लगते हैं।

इसलिए पाखंड से स्वयं को रिक्त करना इस प्रयास से शुरू नहीं होता कि लोग हमें एक बेहतर मसीही समझें। इसके विपरीत, यह परमेश्वर के सामने बिना कुछ छिपाए अपने वास्तविक स्वरूप को देखने से शुरू होता है। हम लोगों को धोखा दे सकते हैं। कुछ हद तक हम उस छवि को भी नियंत्रित कर सकते हैं जो लोग हमारे बारे में देखते हैं। परंतु परमेश्वर के सामने कोई भी मुखौटा काम नहीं आता, क्योंकि परमेश्वर केवल हमारा बाहरी रूप ही नहीं, बल्कि हमारे हृदय के विचारों और उद्देश्यों को भी जानते हैं। इसलिए पाखंड से स्वयं को रिक्त करने के लिए पहला प्रश्न यह नहीं होना चाहिए: “लोग मुझे किस रूप में देखते हैं?” बल्कि: “इस समय परमेश्वर मुझे किस रूप में देख रहे हैं?” इस प्रश्न के सामने ईमानदारी से खड़ा होना ही पाखंड से स्वयं को रिक्त करने की शुरुआत है।

परमेश्वर के वचन को अपनी इच्छाएँ पूरी करने का साधन न बनाएँ

सुसमाचारों में हम देखते हैं कि यीशु ने फरीसियों के पाखंड को बहुत कठोरता से डाँटा। वे परमेश्वर के वचन को अच्छी तरह जानते थे और व्यवस्था का पालन करने में भी बहुत उत्साही थे। लेकिन समस्या यह थी कि वचन को जानना और वचन का पालन करना एक-दूसरे से अलग हो गए थे। लूका 16:18 में यीशु तलाक के विषय में बोलते हैं। उस समय के कुछ धार्मिक अगुवे व्यवस्थाविवरण 24 में तलाक के प्रमाण-पत्र के विषय में दी गई शिक्षा को अपनी इच्छाओं के अनुसार इस्तेमाल करते थे। वे परमेश्वर के वचन को इसलिए ग्रहण नहीं करते थे कि अपनी इच्छाओं से

स्वयं को रिक्त करके परमेश्वर की आज्ञा मानें; बल्कि वे अपनी इच्छाओं को सही ठहराने के लिए वचन का उपयोग करते थे। यह पाखंड का एक रूप है। बाहर से हम कह सकते हैं, “बाइबल ऐसा कहती है,” पर वास्तव में हम परमेश्वर के वचन का उपयोग अपनी इच्छाओं और अपने हितों की रक्षा के लिए कर सकते हैं। हम स्वयं को वचन के अनुसार ढालने के बजाय वचन को अपनी सोच के अनुसार ढालने लगते हैं। आज हम भी इस खतरे से मुक्त नहीं हैं। कलीसिया में सिद्धांत, परंपरा और नियमों को महत्व देना आवश्यक है। लेकिन हमें उनका उपयोग अपने पद और हितों की रक्षा करने के लिए या अपने से अलग सोचने वाले लोगों को बिना सोचे-समझे दोषी ठहराने के लिए नहीं करना चाहिए। परमेश्वर के वचन का प्रकाश सबसे पहले मुझ पर पड़ना चाहिए। दूसरों की ओर उसे निर्देशित करने से पहले उसे मेरे अपने हृदय की ओर निर्देशित होना चाहिए। वचन के द्वारा दूसरे व्यक्ति की गलती खोजने से पहले मुझे उसी वचन के सामने यह देखना चाहिए कि मुझे किस बात से पश्चात्ताप करने की आवश्यकता है। वचन का बहुत ज्ञान होना हमें अपने आप पाखंड से नहीं बचाता। इसके विपरीत, यदि हम वचन को बहुत जानते हैं लेकिन उसके प्रकाश में स्वयं को नहीं देखते, तो बाइबल का ज्ञान भी हमारे पाखंड को छिपाने वाला मुखौटा बन सकता है। इसलिए हमें लगातार अपने आप से पूछना चाहिए: **“क्या मैं वचन का पालन करना चाहता हूँ, या वचन का उपयोग अपनी सोच को सही ठहराने के लिए कर रहा हूँ?”**

पाखंड उस मुखौटे के समान है जो हमारे वास्तविक स्वरूप को छिपाता है

नए नियम में “पाखंडी” के लिए प्रयुक्त यूनानी शब्द **hypokritēs (ὕποκριτής)** मूल रूप से मंच पर किसी दूसरे व्यक्ति की भूमिका निभाने वाले अभिनेता के लिए प्रयोग होता था। अभिनेता मंच पर अपना वास्तविक स्वरूप नहीं दिखाता, बल्कि उसे दी गई भूमिका को प्रस्तुत करता है। यह चित्र हमें पाखंड को समझने में सहायता करता है। पाखंडी विश्वास का अर्थ है लोगों को अपने वास्तविक स्वरूप से अलग रूप दिखाने की कोशिश करना। हमारे हृदय में घृणा हो सकती है, फिर भी हम ऐसे व्यवहार कर सकते हैं मानो हम बहुत प्रेम करने वाले व्यक्ति हों। हमने वास्तव में क्षमा न किया हो, फिर भी हम कह सकते हैं कि हमने क्षमा कर दिया है। हम परमेश्वर से अधिक धन और प्रतिष्ठा पर भरोसा करते हों, फिर भी ऐसा दिखाना चाह सकते हैं मानो हम केवल परमेश्वर पर भरोसा करते हैं। हम कलीसिया में भक्तिपूर्ण बातें कर सकते हैं, लेकिन घर में अपने परिवार के साथ कठोर या लापरवाही से व्यवहार कर सकते हैं। हम मंच से क्षमा का प्रचार कर सकते हैं, जबकि हमारे हृदय में वर्षों पुरानी घृणा हो सकती है। हम किसी व्यक्ति के सामने प्रेमपूर्वक बात कर सकते हैं और उसकी पीठ पीछे उसकी निंदा कर सकते हैं। बाहर से हम किसी की सफलता पर उसे बधाई दे सकते हैं, लेकिन भीतर से उसकी असफलता की इच्छा कर सकते हैं। पाखंड का खतरा यही है: **लोगों के सामने जो मैं हूँ और परमेश्वर के सामने जो मैं हूँ, वे धीरे-धीरे एक-दूसरे से अलग होते जाते हैं।** यीशु ने फरीसियों की तुलना सफेदी की हुई कब्रों से की। वे बाहर से सुंदर दिखाई देती थीं, लेकिन भीतर मरे हुए की हड्डियों

और अशुद्धता से भरी थीं। प्रभु की आपत्ति बाहर को साफ करने पर नहीं थी। समस्या यह थी कि वे बाहर को साफ कर रहे थे, पर भीतर को वैसा ही छोड़ रहे थे। विश्वास लोगों को दिखाई देने वाले हमारे बाहरी रूप को सजाने का काम नहीं है। विश्वास का अर्थ है परमेश्वर के सामने अपने हृदय की वास्तविक दशा को ईमानदारी से देखना, उसके भीतर के पाप से पश्चाताप करना और मसीह के अनुग्रह के द्वारा लगातार बदलते जाना।

पाखंड केवल दूसरों को ही नहीं, स्वयं हमें भी धोखा देता है

यहूदा इस्करियोती हमें दिखाता है कि पाखंड कितनी गहराई तक जा सकता है। उसने अपने हृदय में पहले ही यीशु को पकड़वाने का निर्णय कर लिया था। फिर भी जब यीशु ने कहा कि शिष्यों में से एक उन्हें पकड़वाएगा, तब यहूदा ने अन्य शिष्यों के साथ पूछा: **“हे रब्बी, क्या वह मैं हूँ?”** (मत्ती 26:25) उसने अपने मन में विश्वासघात करने का निर्णय कर लिया था, फिर भी बाहर से ऐसा व्यवहार किया जैसे वह कुछ भी न जानने वाला शिष्य हो। पाखंड की शुरुआत दूसरों को धोखा देने से हो सकती है। लेकिन यदि हम लंबे समय तक मुखौटा पहनकर जीते हैं, तो अंततः हम स्वयं को भी धोखा देने लगते हैं। हम लोगों को दिखाई देने वाली अपनी छवि को ही अपना वास्तविक स्वरूप समझने लगते हैं। यदि कलीसिया में लंबे समय तक लोग हमें विश्वासयोग्य व्यक्ति मानते रहे हैं, तो हम यह सोच सकते हैं कि लोगों का वह मूल्यांकन ही हमारे विश्वास की वास्तविकता है। एक पास्टर अच्छी तरह प्रचार करता हो और बहुत से लोगों से सम्मान पाता हो, तो वह यह भ्रम पाल सकता है कि उसकी अपनी आत्मिक दशा भी अवश्य स्वस्थ होगी। कलीसिया का कोई सेवक यह सोच सकता है कि उसने बहुत वर्षों तक कलीसिया की सेवा की है, इसलिए अब उसके जीवन में पश्चाताप करने के लिए बहुत कम बचा है। लेकिन लोगों का मूल्यांकन हमारी आत्मिक दशा को निर्धारित करने का अंतिम मापदंड नहीं हो सकता। महत्वपूर्ण यह है कि **मैं परमेश्वर के सामने कैसा हूँ।** जब कोई नहीं देखता तब मैं क्या सोचता हूँ, अपने परिवार के साथ कैसा व्यवहार करता हूँ, धन का उपयोग कैसे करता हूँ, दूसरे की सफलता और असफलता को किस मन से देखता हूँ, और जब मेरी गलती सामने आती है तब मैं पश्चाताप करता हूँ या बहाने बनाता हूँ—ये बातें मेरे वास्तविक स्वरूप को प्रकट करती हैं। इसलिए पाखंड से स्वयं को रिक्त करना केवल लोगों के सामने दिखाई देने वाली छवि को सुधारने तक सीमित नहीं होना चाहिए। हमें परमेश्वर के सामने अपने वास्तविक स्वरूप का ईमानदारी से सामना करने तक आगे बढ़ना चाहिए।

परमेश्वर केवल हमारे काम ही नहीं, उनके पीछे के उद्देश्यों को भी देखते हैं

यीशु ने लूका 12:2 में कहा: **“कुछ ढका नहीं, जो खोला न जाएगा; और न कुछ छिपा है, जो जाना न जाएगा।”** हम अपने हृदय को दूसरे लोगों से छिपा सकते हैं। हम अच्छे कामों के पीछे छिपी इच्छाओं को भी छिपा सकते हैं। परंतु परमेश्वर से उन्हें नहीं छिपा सकते। प्रेरित पौलुस भी 1 कुरिन्थियों 4:5 में कहता है कि प्रभु “अंधकार की छिपी बातें ज्योति में दिखाएगा, और मनो के अभिप्रायों को प्रकट करेगा।” परमेश्वर केवल यह नहीं देखते कि हमने **क्या किया**, बल्कि यह भी देखते हैं कि हमने **क्यों किया**। हमने किसी की सहायता की हो सकती है, लेकिन शायद हमारे भीतर मान्यता पाने की इच्छा अधिक थी। हमने कलीसिया की बहुत लगन से सेवा की हो सकती है, लेकिन भीतर अपने पद को बचाए रखने की इच्छा छिपी हो सकती है। हमने सही बात कही हो सकती है, लेकिन सामने वाले को पुनःस्थापित करने की अपेक्षा उसे हराने की इच्छा से कही हो सकती है। इसलिए पाखंड से स्वयं को रिक्त करना केवल अपने व्यवहार को सुधारना नहीं है। यह परमेश्वर के सामने अपने व्यवहार के पीछे छिपे हृदय के उद्देश्यों की जाँच करना है। कभी-कभी हमें स्वयं से पूछना चाहिए: **“मैं वास्तव में यह क्यों कर रहा हूँ?” “क्या मैं परमेश्वर को प्रसन्न करने के लिए यह कर रहा हूँ, या लोगों की मान्यता पाने के लिए?” “क्या मैं इस व्यक्ति को पुनःस्थापित करने के लिए बोल रहा हूँ, या यह सिद्ध करने के लिए कि मैं सही हूँ?” “क्या यह समुदाय के हित के लिए है, या अपने पद और प्रतिष्ठा को बचाने के लिए?”** इन प्रश्नों के सामने ईमानदारी से खड़ा होना पाखंड से स्वयं को रिक्त करने का महत्वपूर्ण अभ्यास है।

दूसरों के पाखंड से पहले अपने भीतर के पाखंड को देखना चाहिए

पाखंड के विषय में वचन पढ़ते समय हमें विशेष रूप से सावधान रहना चाहिए। फरीसियों के बारे में पढ़कर हम तुरंत किसी दूसरे व्यक्ति के बारे में सोच सकते हैं: “वह व्यक्ति बिल्कुल फरीसी जैसा है।” “वह पास्टर पाखंडी है।” “उसकी बातें और उसका जीवन अलग-अलग हैं।” लेकिन पाखंड के विषय में यीशु का वचन सबसे पहले दूसरों का न्याय करने के लिए नहीं दिया गया है। यह सबसे पहले मुझे स्वयं को देखने के लिए दिया गया वचन है। यीशु ने मत्ती 7:5 में कहा: **“हे कपटी, पहले अपनी आँख में से लट्टा निकाल ले, तब तू अपने भाई की आँख का तिनका भली-भाँति देखकर निकाल सकेगा।”** पाखंडी व्यक्ति दूसरे की आँख के तिनके के प्रति बहुत संवेदनशील होता है, पर अपनी आँख के लट्टे के प्रति असंवेदनशील। वह दूसरों की गलतियों को बड़ा और अपनी गलतियों को छोटा देखता है। वह दूसरों से ऊँचे स्तर की अपेक्षा करता है, पर स्वयं के लिए अनेक कारण और अपवाद स्वीकार कर लेता है। इसलिए पाखंड से स्वयं को रिक्त करने का पहला कदम दूसरों के पाखंड को ढूँढ़ना नहीं, बल्कि अपने भीतर के पाखंड को स्वीकार करना है। **“प्रभु, मैंने दूसरों का न्याय किया, पर अपने भीतर के पाप को नहीं देखा।” “प्रभु, मैंने आपके वचन को दूसरों पर लागू किया, लेकिन स्वयं पर लागू नहीं किया।” “प्रभु, लोगों की स्वीकृति पाने के लिए मैंने अपने वास्तविक जीवन से अधिक भक्तिपूर्ण दिखाई देने की कोशिश की।”** हमें परमेश्वर के सामने

ईमानदारी से अपने वास्तविक स्वरूप को स्वीकार करना सीखना चाहिए। वचन दूसरों को घायल करने वाली तलवार बनने से पहले मुझे स्वयं को दिखाने वाला दर्पण होना चाहिए।

स्वयं न करना और दूसरों से उसकी माँग करना पाखंड है

फरीसी पाखंड का एक और रूप यह है कि स्वयं वचन के अनुसार न जीना, लेकिन दूसरों से उसकी माँग करना। हम स्वयं प्रेम नहीं करते, फिर भी दूसरों से कहते हैं कि प्रेम करो। हम स्वयं क्षमा नहीं करते, फिर भी दूसरों से कहते हैं कि क्षमा करो। हम स्वयं सेवा नहीं करते, फिर भी दूसरों से सेवा की माँग करते हैं। हम अपने लोभ से स्वयं को रिक्त नहीं करते, फिर भी दूसरों के लोभ को दोषी ठहराते हैं। यह पाखंड परिवार में भी आसानी से दिखाई दे सकता है। माता-पिता बच्चों से बाइबल पढ़ने के लिए कह सकते हैं, जबकि स्वयं वचन के निकट नहीं आते। वे बच्चों को ईमानदार रहने की शिक्षा दे सकते हैं, लेकिन अपनी गलतियाँ स्वीकार नहीं करते। वे बच्चों से क्षमा माँगने को कह सकते हैं, पर अपनी अभिभावकीय सत्ता का कारण देकर स्वयं क्षमा नहीं माँगते। विशेषकर पिता आसानी से सोच सकता है कि यदि उसने अपनी गलती स्वीकार की तो उसका अधिकार टूट जाएगा। इसलिए अपनी कमजोरी और गलती छिपाने के लिए वह अधिनायकवाद का मुखौटा पहन सकता है। लेकिन जब पिता ने गलती की हो, तब अपनी पत्नी और बच्चों के सामने यह कहना: **“मुझे क्षमा करो। पापा से गलती हुई। प्रभु के सामने भी मुझसे कमी हुई।”** अधिकार खोना नहीं है। बल्कि बच्चे एक ऐसे पिता से, जो पश्चाताप करना जानता है, एक ऐसे पिता की तुलना में अधिक स्पष्ट रूप से सुसमाचार सीख सकते हैं जो पूर्ण होने का अभिनय करता है। महत्वपूर्ण यह नहीं है कि माता-पिता बच्चों को ऐसा दिखाएँ कि वे कभी नहीं गिरते। महत्वपूर्ण यह है कि गिरने पर अपनी गलती स्वीकार करें, परमेश्वर के अनुग्रह पर निर्भर होकर फिर खड़े हों, और बच्चों को यह जीवन दिखाएँ। कलीसिया में भी यही बात लागू होती है। पास्टर और अगुवों को ऐसा व्यवहार करने की आवश्यकता नहीं है जैसे वे सब कुछ जानते हैं और हमेशा सही होते हैं। यदि उनका निर्णय गलत था, तो उन्हें उसे स्वीकार करना चाहिए। यदि उन्होंने किसी को चोट पहुँचाई है, तो उन्हें क्षमा माँगनी चाहिए। उन्हें यह भी स्वीकार करना चाहिए कि वे स्वयं भी ऐसे लोग हैं जिन्हें परमेश्वर के वचन के सामने निरंतर बदलते रहने की आवश्यकता है।

पाखंड से स्वयं को रिक्त करना पूर्ण मनुष्य बनना नहीं है

इसका अर्थ है **पूर्ण दिखाई देने की इच्छा से स्वयं को रिक्त करना**। लोगों को दिखाने के लिए जीया जाने वाला विश्वास धार्मिक अभिनय नहीं बनना चाहिए। यीशु ने फरीसियों को इसलिए भी डाँटा क्योंकि वे लोगों को दिखाई

देने वाले धर्म पर अत्यधिक ध्यान देते थे। विश्वास लोगों को दिखाने का मंच नहीं है। लोग मुझे कितना भक्त समझते हैं, मुझे कितना अच्छा पास्टर मानते हैं, या कितना समर्पित सेवक मानते हैं—ये बातें विश्वास का केंद्र नहीं बननी चाहिए। लोगों से सम्मान पाना अपने आप में गलत नहीं है। अच्छी प्रतिष्ठा के लिए हम धन्यवाद दे सकते हैं। लेकिन जिस क्षण लोगों की राय परमेश्वर के सामने हमारी सच्चाई से अधिक महत्वपूर्ण हो जाती है, उसी क्षण पाखंड शुरू हो सकता है। आज हमारे पास स्वयं को दूसरों के सामने प्रस्तुत करने के पहले से कहीं अधिक अवसर हैं। कलीसिया के भीतर ही नहीं, बल्कि विभिन्न माध्यमों से हम अपनी सेवकाई, भले काम और विचारों को आसानी से लोगों के सामने रख सकते हैं। यह अपने आप में गलत नहीं है। लेकिन इसी कारण हमें अपने हृदय के उद्देश्यों की ओर अधिक सावधानी से जाँच करनी चाहिए। **“क्या मैं परमेश्वर को महिमा दे रहा हूँ, या स्वयं को प्रकट कर रहा हूँ?”** यह प्रश्न दूसरों का न्याय करने के लिए नहीं, बल्कि सबसे पहले स्वयं से पूछने के लिए है। लोगों को दिखाई देने वाली सेवकाई से अधिक महत्वपूर्ण यह है कि जहाँ कोई नहीं देखता वहाँ परमेश्वर के साथ मेरा संबंध कैसा है।

जहाँ कोई नहीं देखता, वहाँ का मेरा जीवन भी परमेश्वर के सामने मेरा वास्तविक जीवन है

पाखंड से स्वयं को रिक्त करने के लिए हमें परमेश्वर के साथ अकेले बिताए समय को मूल्यवान समझना चाहिए। हमें ऐसी प्रार्थना की आवश्यकता है जिसमें हम लोगों के सामने भक्तिपूर्ण दिखाई देने की कोशिश न करें, बल्कि परमेश्वर के सामने अपने वास्तविक हृदय को खोल दें। सिर्फ यह जाँचने के बजाय कि हमने बाइबल पढ़ने का कर्तव्य पूरा किया है, हमें वचन के द्वारा परमेश्वर को अपने हृदय पर प्रकाश डालने देना चाहिए। जहाँ कोई नहीं देखता, वहाँ भी परमेश्वर हमारे साथ हैं। इसलिए गुप्त स्थान का विश्वास महत्वपूर्ण है। यदि हम कलीसिया में कहते हैं कि हम परमेश्वर से प्रेम करते हैं, लेकिन घर में कभी उनके वचन के निकट नहीं आते, तो हमें अपने विश्वास की जाँच करनी चाहिए। यदि माता-पिता बच्चों के सामने आराधना और वचन पर जोर देते हैं, लेकिन स्वयं परमेश्वर के साथ अपने संबंध की उपेक्षा करते हैं, तो बच्चे उनके शब्दों और जीवन के बीच की दूरी देखेंगे। इसके विपरीत, माता-पिता पूर्ण न भी हों, लेकिन यदि वे वचन से प्रेम करते हैं, गलती होने पर पश्चाताप करते हैं और परमेश्वर पर निर्भर होकर फिर उठते हैं, तो बच्चे केवल शब्दों से नहीं बल्कि जीवन से भी विश्वास सीखेंगे। कार्यस्थल में भी यही बात लागू होती है। हमें केवल तब ईमानदार नहीं होना चाहिए जब लोग देख रहे हों; जब कोई नहीं देखता तब भी ईमानदार रहना चाहिए। केवल अधिकारी के सामने होने पर परिश्रम न करें, बल्कि यह समझकर जिम्मेदारी से काम करें कि यह काम परमेश्वर ने हमें सौंपा है। लोगों के सामने के मेरे जीवन और किसी के न देखने पर के मेरे जीवन के बीच की दूरी जितनी कम होगी, हमारा विश्वास उतना ही सच्चा होगा।

परमेश्वर के वचन को दूसरों का न्याय करने का साधन न बनाएँ

बाइबल का बहुत ज्ञान रखना और धर्मशास्त्र का अध्ययन करना बहुमूल्य है। लेकिन बाइबल का ज्ञान आवश्यक रूप से हमें नम्र नहीं बनाता। यदि हम वचन को केवल दूसरों पर लागू करते हैं, तो वही ज्ञान हमें घमंडी भी बना सकता है। उपदेश सुनते समय हम सोच सकते हैं: **“यह संदेश तो उस व्यक्ति को जरूर सुनना चाहिए।”** लेकिन हमें सबसे पहले पूछना चाहिए: **“प्रभु, आज इस वचन के द्वारा आप मुझसे क्या कह रहे हैं?”** दूसरे व्यक्ति की गलती को पहचानना और उसे दोषी ठहराना अलग बातें हैं। ऐसे समय आते हैं जब हमें गलत बात को गलत कहना पड़ता है। समुदाय की रक्षा के लिए समझाने और डाँटने की आवश्यकता भी पड़ सकती है। लेकिन उस समय भी हमें पहले अपने हृदय को देखना चाहिए। क्या मैं उस व्यक्ति की बहाली चाहता हूँ, या उसे हराना चाहता हूँ? क्या मैं सत्य बोल रहा हूँ, या सत्य का उपयोग अपने क्रोध को निकालने के लिए कर रहा हूँ? क्या मैं समुदाय को बनाने की कोशिश कर रहा हूँ, या अपने पद की रक्षा कर रहा हूँ? परमेश्वर का वचन दूसरों पर आक्रमण करने का हथियार बनने से पहले मुझे बदलने वाला वचन होना चाहिए।

पाखंड से स्वयं को रिक्त करना क्रूस के सामने शुरू होता है

तो हम पाखंड से स्वयं को कैसे रिक्त कर सकते हैं? अंततः हमें क्रूस के सामने आना होगा। क्रूस के सामने हमें स्वयं को धर्मी दिखाने की आवश्यकता नहीं है। हम इसलिए नहीं बचाए गए कि हम दूसरों से अधिक भक्त थे या इसलिए कि हमने कभी गलती नहीं की। हम सब पापी हैं जिन्हें मसीह के अनुग्रह की आवश्यकता है। यदि हम वास्तव में इस सत्य पर विश्वास करते हैं, तो अपनी कमजोरियों को छिपाने के लिए मुखौटा पहनने की आवश्यकता कम हो जाती है। गलती होने पर हम उसे स्वीकार कर सकते हैं। पाप करने पर पश्चाताप कर सकते हैं। किसी को चोट पहुँचाने पर क्षमा माँग सकते हैं। जब पवित्र आत्मा वचन के द्वारा हमारे भीतर का पाखंड दिखाते हैं, तो उसे न छिपाएँ और न बहाना बनाएँ। कहें: **“प्रभु, यही मेरा वास्तविक स्वरूप है।”** और उस पाप को क्रूस के सामने ले जाएँ। पाखंड से स्वयं को रिक्त करना स्वयं को अधिक महान व्यक्ति बनाना नहीं है। यह स्वयं को धर्मी दिखाने की इच्छा से रिक्त होना और मसीह की धार्मिकता और अनुग्रह को थामना है। याकूब 3:17 कहता है: **“पर जो ज्ञान ऊपर से आता है वह पहले तो पवित्र होता है, फिर मिलनसार, कोमल और मृदुभाव, दया और अच्छे फलों से लदा हुआ, पक्षपात और कपट रहित होता है।”** परमेश्वर केवल बाहर से सुंदर सजाए हुए व्यक्ति को नहीं चाहते। वे ऐसे व्यक्ति को चाहते हैं जो अपनी कमियों के बावजूद परमेश्वर के सामने अपने वास्तविक स्वरूप को ईमानदारी से स्वीकार करे, पश्चाताप करे और मसीह के अनुग्रह में निरंतर बदलता जाए। **पाखंड से स्वयं को रिक्त करना निर्दोष मनुष्य बनना**

नहीं है; इसका अर्थ उस मुखौटे को उतार देना है जो हमें निर्दोष दिखाई देना चाहता है। और इसका अर्थ है कि लोगों के सामने जो मैं हूँ और परमेश्वर के सामने जो मैं हूँ, वे धीरे-धीरे एक ही सच्चे व्यक्ति बनते जाएँ।

“पाखंड” से स्वयं को रिक्त करने के सिद्धांत और व्यावहारिक दिशानिर्देश

तो फिर हम अपने परिवार, कलीसिया और कार्यस्थल में पाखंड से स्वयं को कैसे रिक्त करते जाएँ? पाखंड ऐसा पाप नहीं है जो एक बार निर्णय लेने से पूरी तरह समाप्त हो जाए। हम बार-बार लोगों की राय की चिंता करते हैं और अपने आप को उनके सामने अच्छा दिखाने की इच्छा का अनुभव करते हैं। इसलिए हमें पवित्र आत्मा की सहायता माँगते हुए प्रतिदिन परमेश्वर के वचन के सामने अपने हृदय की जाँच करनी चाहिए। हम अपने वास्तविक जीवन में निम्नलिखित पाँच बातों का अभ्यास कर सकते हैं।

1. लोगों की दृष्टि से अधिक परमेश्वर के सामने जिएँ।

लूका 12:2 कहता है: **“कुछ ढका नहीं, जो खोला न जाएगा; और न कुछ छिपा है, जो जाना न जाएगा।”** जब हम परमेश्वर से अधिक लोगों की दृष्टि के प्रति सचेत होते हैं, तब पाखंड आसानी से बढ़ता है। यदि हम इस बात के बारे में बहुत अधिक सोचने लगें कि लोग हमें किस रूप में देखते हैं, तो हम अपने वास्तविक स्वरूप से बेहतर दिखाई देने के लिए स्वयं को सजाने लगते हैं। इसलिए जब आप कोई अच्छा काम करें, सेवकाई करें या किसी दूसरे व्यक्ति की सेवा करें, तब भी अपने हृदय की जाँच करें। **“यदि लोग मुझे इसके लिए पहचान न दें, तो भी क्या मैं यह काम करूँगा?”** यह प्रश्न हमारे उद्देश्यों की जाँच करने में हमारी सहायता करता है। यह विश्वास करना सीखें कि यदि लोग न भी जानें, तो परमेश्वर का जानना पर्याप्त है। लोगों की तालियों से अधिक परमेश्वर को प्रसन्न करने को महत्वपूर्ण समझें।

2. अपने शब्दों और कार्यों के पीछे छिपे उद्देश्यों की जाँच करें।

एक ही कार्य के पीछे अलग-अलग उद्देश्य हो सकते हैं। हम किसी की सहायता करते हुए मान्यता पाने की इच्छा रख सकते हैं। सही बात कहते हुए भी सामने वाले को हराना चाह सकते हैं। कलीसिया की सेवा करते हुए अपने पद को सुरक्षित रखना चाह सकते हैं। इसलिए हमें बार-बार अपने आप से पूछना चाहिए: **“मैं अभी यह बात क्यों**

कह रहा हूँ?” “इस काम को करने का मेरा वास्तविक उद्देश्य क्या है?” “क्या यह परमेश्वर के लिए है, या स्वयं को प्रकट करने के लिए?” हम अपने उद्देश्यों को पूरी तरह नहीं जान सकते। इसीलिए हमें और अधिक यह प्रार्थना करनी चाहिए कि पवित्र आत्मा वचन के द्वारा हमारे हृदय की जाँच करें। दूसरों का न्याय करने से पहले अपने हृदय की जाँच करें। वचन को दूसरे व्यक्ति पर लागू करने से पहले उसे स्वयं पर लागू करें।

3. अपने शब्दों और जीवन के बीच की दूरी को ईमानदारी से स्वीकार करें।

पाखंड तब बढ़ता है जब हम उस विश्वास को जीते हुए दिखाई देना चाहते हैं जिसे हम वास्तव में अभी जी नहीं रहे हैं। इसलिए अपने आप को वास्तविकता से अधिक आत्मिक व्यक्ति के रूप में प्रस्तुत न करें। जो नहीं जानते, उसके बारे में यह कहने में सक्षम हों कि “मैं नहीं जानता।” जहाँ आपने गलती की है, वहाँ यह स्वीकार करने में सक्षम हों कि “मैं गलत था।” यदि आपके जीवन में ऐसे क्षेत्र हैं जो अभी तक बदले नहीं हैं, तो उन्हें परमेश्वर के सामने ईमानदारी से स्वीकार करें। विशेषकर परिवार में यह और भी महत्वपूर्ण है। माता-पिता को अपने बच्चों को पूर्णता नहीं दिखानी है। उन्हें यह दिखाना है कि गलती होने पर पश्चाताप कैसे किया जाता है। यदि पिता ने गलती की है, तो उसे अपनी पत्नी और बच्चों से यह कहने में सक्षम होना चाहिए: “मुझे क्षमा करो। पापा से गलती हुई।” पास्टर और अगुवों के लिए भी यही बात लागू होती है। अपने अधिकार को बचाने के लिए गलती छिपाने के बजाय उन्हें अपनी गलती स्वीकार करने और क्षमा माँगने में सक्षम होना चाहिए। क्षमा माँगना आत्मिक अधिकार को नष्ट नहीं करता; वह पाखंड का मुखौटा उतारता है।

4. जहाँ कोई नहीं देखता, वहाँ परमेश्वर के साथ अपने संबंध को मूल्यवान समझें।

लोगों को दिखाई देने वाले विश्वास से अधिक उस विश्वास को मूल्यवान समझें जो आप परमेश्वर के साथ अकेले होने पर जीते हैं। प्रार्थना को लोगों के सामने भक्त दिखाई देने का साधन न बनाएँ। बाइबल भी केवल इस संतोष के लिए न पढ़ें कि आपने अपना धार्मिक कर्तव्य पूरा कर लिया है। उसे इसलिए पढ़ें कि वचन के द्वारा परमेश्वर से मिलें और अपने हृदय की जाँच करें। परिवार में माता-पिता को स्वयं पहले वचन के निकट रहने और प्रार्थना का जीवन जीने की आवश्यकता है। केवल बच्चों से विश्वास का जीवन जीने की माँग न करें। माता-पिता पहले उन्हें दिखाएँ कि वे स्वयं परमेश्वर को खोजते हैं। कार्यस्थल में भी जब लोग देख रहे हों और जब कोई न देख रहा हो, तब आपके जीवन में अंतर न हो। जहाँ कोई नहीं देखता, वहाँ भी परमेश्वर देख रहे हैं। लोगों के सामने जो मैं हूँ और परमेश्वर के सामने जो मैं हूँ, उनके बीच की दूरी का कम होते जाना ही पाखंड से स्वयं को रिक्त करने का मार्ग है।

5. विश्वासयोग्य व्यक्ति की सलाह को नम्रता से सुनें।

कई बार हम अपने पाखंड को स्वयं नहीं देख पाते। इसलिए हमें ऐसे विश्वासयोग्य साथी की आवश्यकता है जो हमसे प्रेम करता हो और आवश्यकता पड़ने पर हमें वह बात भी बता सके जिसे सुनना हमारे लिए जरूरी है। जब कोई हमारी गलती दिखाए, तो तुरंत अपना बचाव न करें। हर आलोचना को बिना जाँच के स्वीकार करने की आवश्यकता नहीं है, लेकिन पहले उसे परमेश्वर के सामने जाँचें। **“क्या इस बात के द्वारा परमेश्वर मुझे कुछ दिखा रहे हैं?”** अपनी प्रतिष्ठा बचाने से अधिक सत्य को महत्वपूर्ण समझें। दूसरे की आँख का तिनका खोजने से पहले अपनी आँख के लट्ठे को देखें। और यदि आपको अपनी गलती दिखाई दे, तो बहाना न बनाएँ; पश्चाताप करें। जब समुदाय में हम प्रेम से एक-दूसरे को समझा सकें और नम्रता से सलाह ग्रहण कर सकें, तब पाखंड धीरे-धीरे अपना स्थान खो देता है। लेकिन हमें इन पाँच बातों को केवल अपने प्रयास से पूरा करने की कोशिश नहीं करनी चाहिए। पाखंड से स्वयं को रिक्त करने के लिए भी परमेश्वर के अनुग्रह और पवित्र आत्मा की सहायता की आवश्यकता है। हम अपनी शक्ति से अपने हृदय की गहराई में छिपे सभी उद्देश्यों को पूरी तरह शुद्ध नहीं कर सकते। बल्कि जिस क्षण हम सोचने लगते हैं, **“अब मैं पाखंडी नहीं हूँ,”** उसी क्षण हम किसी दूसरे प्रकार की आत्म-धार्मिकता में गिर सकते हैं। इसलिए हमें प्रार्थना करनी चाहिए कि पवित्र आत्मा वचन के द्वारा हमारे हृदय पर प्रकाश डालें। उस प्रकाश में प्रकट होने वाले पाप को स्वीकार करें, उससे पश्चाताप करें और क्रूस के अनुग्रह पर निर्भर रहें। हम इस प्रकार प्रार्थना कर सकते हैं: **“प्रभु, मुझे वह रूप न दिखाएँ जिसे मैं लोगों को दिखाना चाहता हूँ, बल्कि वह वास्तविक रूप दिखाएँ जिसे आप देखते हैं। मेरे भीतर छिपे पाखंड और आत्म-धार्मिकता को दिखाएँ, और मुझे उन्हें छिपाने या उनके लिए बहाने बनाने न दें। लोगों की मान्यता और प्रशंसा पाने की इच्छा से मेरे हृदय को रिक्त करें और मुझे केवल आपको प्रसन्न करते हुए जीना सिखाएँ। मेरे शब्दों और मेरे जीवन को एक करें। मुझे ऐसा ईमानदार व्यक्ति बनाएँ जो गलती होने पर उसे स्वीकार कर सके, पश्चाताप कर सके और क्षमा माँग सके। पवित्र आत्मा, प्रतिदिन मेरे हृदय पर अपना प्रकाश डालें और उसे मसीह के सच्चे हृदय से भर दें।”**

पाखंड से स्वयं को रिक्त करने का अर्थ यह नहीं है कि हम अपनी सारी कमजोरियाँ और असफलताएँ हर व्यक्ति के सामने प्रकट कर दें। इसका अर्थ यह भी नहीं है कि बिना किसी विवेक के अपने मन की हर बात कह दें। पाखंड से स्वयं को रिक्त करने का मूल अर्थ लोगों को दिखाई देने वाले मेरे स्वरूप और परमेश्वर के सामने मेरे वास्तविक स्वरूप के बीच की दूरी को कम करते जाना है। इसका अर्थ है कि हमारे शब्द और जीवन धीरे-धीरे एक होते जाएँ; लोगों के सामने का हमारा जीवन और जहाँ कोई नहीं देखता वहाँ का हमारा जीवन एक होता जाए; और जब हम गलत हों, तब मुखौटे के पीछे न छिपें बल्कि परमेश्वर के सामने ईमानदारी से पश्चाताप करें। स्वयं को रिक्त करने का उद्देश्य एक खाली व्यक्ति बनना नहीं है। उद्देश्य उस हृदय को मानवीय मान्यता, आत्म-धार्मिकता और

दिखावे से रिक्त करना है और उस स्थान को मसीह के मन से भरना है। पाखंड कहता है: **“मैं चाहता हूँ कि लोग मुझे इस रूप में देखें।”** विश्वास स्वीकार करता है: **“मैं परमेश्वर के सामने सच्चाई से जीना चाहता हूँ।”** इसलिए जो व्यक्ति पाखंड से स्वयं को रिक्त करता है, वह पूर्ण व्यक्ति दिखाई देने का प्रयास नहीं करता। वह अपनी कमजोरी स्वीकार करता है, पर वहीं रुका नहीं रहता; वह प्रतिदिन क्रूस के अनुग्रह पर निर्भर होकर बदलता जाता है। वह लोगों की तालियों से अधिक परमेश्वर की दृष्टि के प्रति सचेत रहता है, अपनी प्रतिष्ठा से अधिक सत्य को चुनता है, और दूसरों की गलतियाँ बताने से पहले अपने हृदय की जाँच करता है। और परिवार, कलीसिया तथा कार्यस्थल में उसके शब्द और उसका जीवन धीरे-धीरे एक होते जाते हैं। **यही “पाखंड” से स्वयं को रिक्त करने का वह मार्ग है जिस पर हमें प्रतिदिन चलना है।**

अध्याय 7:

“झूठ” को रिक्त करना

पिछले अध्याय में हमने “पाखंड” पर विचार किया था, जो लोगों के सामने दिखाई देने वाले हमारे स्वरूप और परमेश्वर के सामने हमारे वास्तविक स्वरूप के बीच उत्पन्न होने वाली दूरी है। यदि पाखंड अपने वास्तविक स्वरूप को छिपाने के लिए मुखौटा पहनना है, तो झूठ अपने लाभ के लिए सत्य को छिपाना या बदलना है, और इससे भी आगे बढ़कर परमेश्वर के सत्य को विकृत करना है। झूठ केवल ऐसी बात कहने तक सीमित नहीं है जो तथ्यों के विपरीत हो। झूठ उस हृदय से शुरू होता है जो सत्य को अस्वीकार करता है और अपने लिए लाभदायक बात को सत्य मान लेता है। यूहन्ना 8:44 में यीशु ने शैतान को “झूठा और झूठ का पिता” कहा। झूठ की जड़ में ऐसी शक्ति है जो मनुष्य को परमेश्वर के वचन के बजाय किसी और बात पर विश्वास करने के लिए प्रेरित करती है और अंततः उसे परमेश्वर से दूर ले जाती है। इसलिए, दूसरों के झूठ को खोजने से पहले हमें स्वयं से पूछना चाहिए: **“क्या मैं परमेश्वर के सामने सच्चाई से जीवन जी रहा हूँ?” “क्या मैं अपने लाभ और प्रतिष्ठा की रक्षा करने के लिए तथ्यों को छिपा या बदल रहा हूँ?” “क्या मैं परमेश्वर के वचन को वैसा ही स्वीकार करता हूँ जैसा वह है, या केवल वही वचन स्वीकार करता हूँ जिसे मैं सुनना चाहता हूँ?”** झूठ को रिक्त करना इन प्रश्नों के सामने ईमानदारी से स्वयं की जाँच करने से शुरू होता है।

झूठ हमें परमेश्वर को जानने से रोकता है

यिर्मयाह 9:3-6 हमें उस समय के यहूदा की स्थिति दिखाता है, जो झूठ से भर गया था। लोग धनुष खींचने के समान अपनी जीभ से झूठ चलाते थे। वे एक-दूसरे को धोखा देते थे और सत्य नहीं बोलते थे। इससे भी अधिक गंभीर समस्या यह थी कि ऐसे जीवन के बीच उन्होंने परमेश्वर को जानने से इनकार कर दिया था। झूठ केवल मनुष्य और मनुष्य के बीच के भरोसे को नष्ट नहीं करता। वह परमेश्वर के साथ हमारे संबंध को भी नष्ट करता है। यदि हम अपने मुँह से कहते हैं कि हम परमेश्वर पर विश्वास करते हैं, लेकिन अपने जीवन में झूठ और छल को स्वाभाविक मानते हैं, तो हम परमेश्वर पर विश्वास करने का दावा तो करते हैं, पर वास्तव में संसार के तरीकों पर अधिक भरोसा कर रहे

होते हैं। भजन संहिता 62:4 ऐसे लोगों का चित्र प्रस्तुत करता है जो अपने मुँह से आशीष देते हैं, लेकिन अपने भीतर शाप देते हैं। उनके शब्द और उनका हृदय एक नहीं हैं। हम अपने दैनिक जीवन के छोटे-छोटे झूठों को आसानी से हल्का समझ सकते हैं। अपनी गलती छिपाने के लिए हम तथ्य को थोड़ा बदल सकते हैं, जिम्मेदारी से बचने के लिए किसी महत्वपूर्ण बात को छोड़ सकते हैं, या अपनी प्रतिष्ठा बचाने के लिए दोष किसी दूसरे व्यक्ति पर डाल सकते हैं। लेकिन यदि हम छोटे-छोटे झूठों को बार-बार स्वीकार करते रहते हैं, तो हमारा विवेक धीरे-धीरे सुन्न हो जाता है। शुरू में हमारे मन में बेचैनी होती है, लेकिन बार-बार ऐसा करने के बाद हम झूठ बोलते हुए भी कुछ महसूस नहीं कर सकते। इसलिए झूठ को रिक्त करने का अर्थ केवल बड़े झूठ न बोलना नहीं है। इसका अर्थ है परमेश्वर के सामने सत्य से प्रेम करना और यह सीखना कि चाहे हमें नुकसान ही क्यों न उठाना पड़े, फिर भी हम सत्य को चुनें।

झूठा वचन लोगों को परमेश्वर से दूर ले जाता है

बाइबल जिस प्रकार के झूठ के विरुद्ध विशेष रूप से कठोर चेतावनी देती है, उनमें से एक है परमेश्वर के नाम में झूठ बोलना। यिर्मयाह के समय में ऐसे झूठे भविष्यद्वक्ता थे जो दावा करते थे कि उन्हें परमेश्वर का वचन सौंपा गया है, जबकि वास्तव में वे ऐसी बातें सुनाते थे जो परमेश्वर ने उन्हें दी ही नहीं थीं। यिर्मयाह 6:13-15 में हम देखते हैं कि लोग लोभ में डूबे हुए थे और अगुवे झूठ का व्यवहार कर रहे थे। फिर भी वे लोगों के घाव को हल्के में लेते हुए कहते थे: **“शान्ति है, शान्ति है।”** लेकिन वास्तव में शान्ति नहीं थी। यही झूठे वचन का खतरा है। लोग जो सुनना चाहते हैं, वही उन्हें बता देना आवश्यक रूप से प्रेम नहीं है। यदि पाप के कारण किसी व्यक्ति का परमेश्वर के साथ संबंध टूट रहा है, फिर भी हम उससे कहें कि कोई समस्या नहीं है, तो वह जीवन देने वाली सांत्वना नहीं हो सकती। सच्ची सांत्वना पाप को छिपाती नहीं, बल्कि पापी को मसीह के पास ले जाती है। सच्चा प्रेम उस व्यक्ति को झूठी शान्ति नहीं देता जिसे पश्चाताप की आवश्यकता है। वह उसकी सहायता करता है कि वह परमेश्वर के वचन के सामने अपनी वास्तविक स्थिति को पहचाने और परमेश्वर की ओर लौटे।

जब परमेश्वर ने नहीं भेजा है, तब परमेश्वर के नाम में नहीं बोलना चाहिए

जब यिर्मयाह झूठे भविष्यद्वक्ताओं को डाँटता था, तो वह बार-बार एक समस्या की ओर संकेत करता था। परमेश्वर ने उन्हें नहीं भेजा था, फिर भी वे कहते थे कि उन्हें भेजा गया है। यिर्मयाह 28:15 में यिर्मयाह हनन्याह से कहता है: **“यहोवा ने तुझे नहीं भेजा, तौभी तूने इस प्रजा को झूठ पर भरोसा दिलाया है।”** यिर्मयाह 14, 23 और 27 में भी यही समस्या बार-बार दिखाई देती है। परमेश्वर ने नहीं कहा था, फिर भी वे कहते थे: **“परमेश्वर ने कहा है।”** वे अपने विचारों, सपनों और इच्छाओं को ऐसे प्रस्तुत करते थे मानो वे परमेश्वर का वचन हों। यह ऐसा पाप है जिससे

विशेष रूप से एक पास्टर को डरना चाहिए। एक पास्टर को अपने विचारों को परमेश्वर का वचन बनाने का अधिकार नहीं है। उसे अपने राजनीतिक विचारों, व्यक्तिगत इच्छाओं, सफलता की अपेक्षाओं या अनुभवों को भी परमेश्वर की इच्छा घोषित नहीं करना चाहिए। उपदेशक वचन को बनाने वाला व्यक्ति नहीं है; वह वह व्यक्ति है जिसे वचन सौंपा गया है। इसलिए उपदेशक को निरन्तर स्वयं से पूछना चाहिए: **“क्या वास्तव में यही बात यह बाइबिल-पाठ कह रहा है?”** **“क्या मैं परमेश्वर ने जो कहा है और मैं जो कहना चाहता हूँ, उन दोनों को मिला तो नहीं रहा?”** **“क्या मैं वह कह रहा हूँ जिसे विश्वासी सुनना चाहते हैं, या मैं उस वचन को विश्वासयोग्यता से सुना रहा हूँ जो परमेश्वर ने दिया है?”** जो व्यक्ति मंच से परमेश्वर के नाम का जितना अधिक उपयोग करता है, उसे इन प्रश्नों के सामने उतने ही अधिक भय और श्रद्धा के साथ खड़ा होना चाहिए।

कानों को अच्छा लगने वाली बात हमेशा अच्छा वचन नहीं होती

2 तीमुथियुस 4:3 चेतावनी देता है कि ऐसा समय आएगा जब लोग खरा उपदेश सहन नहीं करेंगे, बल्कि “कानों की खुजली के कारण अपनी अभिलाषाओं के अनुसार बहुत से उपदेशक बटोर लेंगे।” यहाँ दो समस्याएँ एक साथ दिखाई देती हैं। पहली समस्या उन अगुवों की है जो केवल वही सुनाते हैं जिसे लोग सुनना चाहते हैं। दूसरी समस्या उन श्रोताओं की है जो केवल वही खोजते हैं जिसे वे स्वयं सुनना चाहते हैं। जब ये दोनों एक साथ मिलते हैं, तो झूठी शिक्षा और भी अधिक शक्तिशाली हो जाती है। उपदेशक लोगों की तालियाँ चाहता है, और श्रोता ऐसा उपदेश चाहते हैं जो उनकी इच्छाओं को स्वीकार करे। अंततः दोनों एक-दूसरे को वही देने लगते हैं जिसे दूसरा सुनना चाहता है। लेकिन परमेश्वर का वचन हमेशा हमारे कानों को आराम देने वाला वचन नहीं होता। कभी वह हमें सांत्वना देता है। कभी वह हमें डाँटता है। कभी वह हमारे पाप को प्रकट करता है। कभी वह हमें उस मार्ग से लौटने की आज्ञा देता है जिस पर हम चल रहे थे। और वह हमेशा हमें यीशु मसीह के पास ले जाता है। इसलिए सच्चे उपदेश का मापदंड यह नहीं है: **“क्या यह सुनने में मुझे अच्छा लगता है?”** बल्कि हमें यह देखना चाहिए: **“क्या यह वचन पवित्रशास्त्र से आया है?”** **“क्या यह वचन मुझे मसीह के पास ले जाता है?”** **“क्या इस वचन के सामने मैं स्वयं को जाँचता हूँ, पश्चाताप करता हूँ और आज्ञा मानता हूँ?”**

मीकायाह ने वह वचन सुनाया जो परमेश्वर ने दिया था, न कि वह जिसे लोग सुनना चाहते थे

1 राजा 22 में एक ऐसी घटना दर्ज है जो झूठे वचन और सच्चे वचन के बीच के अंतर को स्पष्ट रूप से दिखाती है। जब राजा अहाब गिलाद के रामोत पर आक्रमण करने जा रहा था, तब बहुत से भविष्यद्वक्ताओं ने राजा को वही बताया जो वह सुनना चाहता था। उन्होंने कहा कि यदि वह युद्ध में जाएगा तो विजय प्राप्त करेगा। लेकिन मीकायाह अलग था। लोगों ने मीकायाह से कहा कि वह भी दूसरे भविष्यद्वक्ताओं के समान अच्छी बातें कहे। लेकिन मीकायाह ने कहा: **“यहोवा मुझसे जो कहेगा, वही मैं कहूँगा।”** यह एक वाक्य उस मनोभाव को दिखाता है जो वचन के सच्चे सेवक में होना चाहिए। उपदेशक वह व्यक्ति नहीं है जो ऐसी बातें बनाता है जिन्हें मण्डली सुनना चाहती है। वह ऐसा व्यक्ति भी नहीं है जो राजा को प्रसन्न करने वाली बातें कहे। वह अपनी लोकप्रियता बचाने के लिए वचन को नरम या परिवर्तित करने वाला व्यक्ति भी नहीं है। वह वह व्यक्ति है जो परमेश्वर ने जो कहा है, उसे सुनाता है। मीकायाह का संदेश वह नहीं था जिसे राजा सुनना चाहता था। परिणामस्वरूप उससे घृणा की गई और उसने दुःख सहा। लेकिन लोगों की प्रतिक्रिया के कारण उसने परमेश्वर के वचन को नहीं बदला। वचन का सच्चा सेवक लोगों की तालियों से अधिक परमेश्वर के वचन का भय मानता है।

सच्चा उपदेश लोगों को पश्चाताप और मसीह की ओर ले जाता है

तो फिर हम सच्चे पास्टर और झूठे पास्टर में अंतर कैसे पहचान सकते हैं? केवल इस आधार पर निर्णय नहीं किया जा सकता कि कोई व्यक्ति अच्छा उपदेश देता है, उसके पास बहुत लोग इकट्ठे होते हैं, वह प्रसिद्ध है या उसका संदेश बहुत भावनात्मक और प्रभावशाली है। पवित्रशास्त्र में हम कम से कम तीन बातों की जाँच कर सकते हैं। पहली, हमें देखना चाहिए कि क्या वह उस वचन को सुनाता है जिसे परमेश्वर ने उसे सौंपा है। उसे अपने विचारों को परमेश्वर का वचन बनाकर प्रस्तुत नहीं करना चाहिए, बल्कि पवित्रशास्त्र वास्तव में जो कहता है उसे विश्वासयोग्यता से सुनना चाहिए। दूसरी, हमें देखना चाहिए कि उसके संदेश में परमेश्वर के वचन का वास्तविक सार है या नहीं। यिर्मयाह के समय के झूठे भविष्यद्वक्ता अपने सपनों और विचारों को परमेश्वर के वचन के समान सुनाते थे। लेकिन सच्चा वचन मनुष्य की कल्पना से नहीं आता; उसकी जड़ परमेश्वर के वचन में होती है। तीसरी, हमें देखना चाहिए कि क्या वह लोगों को पश्चाताप और आज्ञाकारिता की ओर ले जाता है। सच्चा उपदेश केवल लोगों को दोषी ठहराने पर समाप्त नहीं होता। वह उन्हें उनके पाप का बोध कराता है, उन्हें क्रूस के पास ले जाता है, और मसीह के अनुग्रह को थामकर नए जीवन की ओर बढ़ने में सहायता करता है। जब सांत्वना की आवश्यकता हो, तब सांत्वना देनी चाहिए। एक घायल व्यक्ति को और अधिक दबाना सच्चा उपदेश नहीं है। लेकिन जहाँ पश्चाताप की आवश्यकता है, वहाँ पश्चाताप की बात न करना भी प्रेम नहीं है। सच्चा चरवाहा वह नहीं है जो भेड़ों को अपने पीछे चलाता है, बल्कि वह है जो भेड़ों को मसीह के पीछे चलने में सहायता करता है।

विश्वासियों को भी सुने हुए वचन को परखना चाहिए

झूठी शिक्षा की सारी जिम्मेदारी केवल पास्टर पर नहीं डाली जानी चाहिए। विश्वासियों की भी जिम्मेदारी है कि वे सुने हुए वचन को परखें। केवल इसलिए कि कोई व्यक्ति प्रसिद्ध है, हमें उसकी हर बात को बिना जाँचे परमेश्वर का वचन नहीं मान लेना चाहिए। किसी पास्टर का पद, उसकी शिक्षा या उसकी कलीसिया का आकार उसकी हर बात को अपने आप सत्य नहीं बना देता। उपदेश सुनते समय हमें बाइबल खोलकर जाँच करनी चाहिए: **“क्या वास्तव में बाइबल यही सिखाती है?” “क्या इस बाइबिल-पाठ का अर्थ सही रीति से बताया जा रहा है?” “क्या यह यीशु मसीह के सुसमाचार के अनुरूप है?”** पास्टर का सम्मान करना और पास्टर को पूर्ण तथा अंतिम अधिकार मान लेना दो अलग बातें हैं। सच्चे पास्टर को यह नहीं चाहना चाहिए कि विश्वासी उस पर निर्भर रहें। बल्कि उसे उनकी सहायता करनी चाहिए कि वे स्वयं वचन पढ़ें, प्रार्थना करें, पवित्र आत्मा की अगुवाई खोजें और मसीह के पीछे चलें। हमारे विश्वास का अंतिम विषय कोई मनुष्य नहीं, बल्कि परमेश्वर है।

झूठ दूसरे व्यक्ति के जीवन को नष्ट कर सकता है

बाइबल झूठी गवाही को बहुत गंभीरता से लेती है। दस आज्ञाओं की नौवीं आज्ञा स्पष्ट है: **“तू अपने पड़ोसी के विरुद्ध झूठी गवाही न देना।”** झूठ केवल शब्दों की समस्या नहीं है। वह किसी व्यक्ति की प्रतिष्ठा, परिवार, कार्यस्थल और पूरे जीवन को नष्ट कर सकता है। 1 राजा 21 में ईज़ेबेल ने नाबोत की दाख की बारी छीनने के लिए झूठे गवाह खड़े किए। उसने उनसे झूठी गवाही दिलवाई कि नाबोत ने परमेश्वर और राजा को शाप दिया था, और अंततः निर्दोष नाबोत को मार डाला गया। लोभ ने झूठ को जन्म दिया, और झूठ ने एक व्यक्ति का जीवन छीन लिया। इसलिए जब हम किसी दूसरे व्यक्ति के बारे में कोई बात सुनें, तो हमें जल्दबाजी में निर्णय नहीं करना चाहिए। पवित्रशास्त्र सिखाता है कि किसी गंभीर मामले को केवल एक व्यक्ति की गवाही पर निश्चित न किया जाए, बल्कि पर्याप्त गवाहियों के द्वारा तथ्य की पुष्टि की जाए (व्यवस्थाविवरण 19:15)। कलीसिया में भी यही सिद्धांत लागू होता है। केवल इसलिए कि हमने किसी व्यक्ति के बारे में कोई बुरी बात सुनी है, हमें उसे तुरंत सत्य नहीं मान लेना चाहिए और न ही उसे दूसरों में फैलाना चाहिए। पहले तथ्यों की पुष्टि करनी चाहिए। केवल एक पक्ष की बात सुनकर किसी व्यक्ति को दोषी भी नहीं ठहराना चाहिए। विशेष रूप से अगुवाई के पद पर बैठे लोगों को और अधिक सावधान रहना चाहिए। क्योंकि यदि वे बिना जाँची हुई बातों पर विश्वास करके निर्णय करते हैं, तो वे किसी व्यक्ति को ऐसा घाव दे सकते हैं जिसे ठीक करना बहुत कठिन हो। सत्य से प्रेम करने वाला व्यक्ति वह नहीं है जो अफवाह को जल्दी फैलाता है, बल्कि वह है जो तथ्यों की सावधानी से पुष्टि करता है।

झूठ सत्य को मिटा नहीं सकता

जब यीशु जी उठे, तब महायाजकों और पुरनियों ने सैनिकों को पैसे देकर उनसे एक झूठ फैलाने को कहा: **“रात को जब हम सो रहे थे, उसके चेले आए और उसे चुरा ले गए।”** उन्होंने अपने पद और प्रतिष्ठा की रक्षा करने के लिए पैसे देकर झूठ बनवाया। लेकिन वह झूठ पुनरुत्थान के सत्य को मिटा नहीं सका। मनुष्य सत्य को छिपाने का प्रयास कर सकता है। वह धन और शक्ति का उपयोग करके तथ्यों को विकृत भी कर सकता है। लेकिन वह उस सत्य को मिटा नहीं सकता जिसे परमेश्वर ने पूरा किया है। यह बात उन लोगों के लिए भी महत्वपूर्ण सांत्वना है जो झूठ के कारण अन्याय सहते हैं। हर सत्य उस समय प्रकट नहीं होता जब हम चाहते हैं। कभी-कभी हमें लंबे समय तक गलत समझा जा सकता है। लेकिन विश्वासियों को झूठ को किसी दूसरे झूठ से हराने का प्रयास नहीं करना चाहिए। हमें सत्य बोलना चाहिए, अपनी जिम्मेदारियों को पूरा करना चाहिए और अंतिम न्याय परमेश्वर को सौंप देना चाहिए। झूठ पर विजय पाने का मार्ग अधिक चालाक झूठ नहीं, बल्कि सत्य है।

सुसमाचार में कुछ जोड़ने से भी सावधान रहना चाहिए

गलातियों की पत्री में पौलुस उस झूठी शिक्षा के विरुद्ध कठोर चेतावनी देता है जो मसीह के सुसमाचार में मनुष्य के पुण्य और कर्मों को जोड़ना चाहती थी। उद्धार हमारे कर्मों या हमारी योग्यताओं के द्वारा प्राप्त नहीं होता। हम यीशु मसीह द्वारा क्रूस पर पूर्ण किए गए उद्धार के अनुग्रह को विश्वास के द्वारा प्राप्त करते हैं। इसलिए यदि हम सुसमाचार में मनुष्य के पुण्य को जोड़कर ऐसा सिखाएँ कि वह उद्धार की शर्त है, तो हम सुसमाचार के मूल स्वरूप को धुँधला कर सकते हैं। 2 कुरिन्थियों 2:17 में भी पौलुस कहता है कि वह परमेश्वर के वचन में मिलावट नहीं करता। हमें अपने लाभ के लिए परमेश्वर के वचन का उपयोग नहीं करना चाहिए। एक पास्टर के लिए वचन सफलता प्राप्त करने का साधन नहीं है। वह कलीसिया को बड़ा बनाने के लिए कोई वस्तु नहीं है। वह लोगों का मन जीतने का साधन भी नहीं है। वचन परमेश्वर का है। इसलिए जिसे वचन सौंपा गया है, उसे अपनी इच्छाओं के साथ मिलाए बिना उसे शुद्धता से सुनाना चाहिए।

झूठ को रिक्त करना सत्य के सामने ईमानदारी से स्वयं की जाँच करना है

झूठ के विषय में परमेश्वर का वचन पढ़ते समय हमें केवल झूठे पास्टरों और झूठे विश्वासियों को खोजने पर समाप्त नहीं करना चाहिए। हमें फिर अपने पास लौटना चाहिए। पास्टर को स्वयं से पूछना चाहिए: **“क्या मैं ऐसी**

बात को परमेश्वर की इच्छा बता रहा हूँ जो परमेश्वर ने कही ही नहीं?” “क्या मैं कलीसिया की वृद्धि या अपनी प्रतिष्ठा के लिए वचन को बदल रहा हूँ?” “क्या मैं केवल इसलिए उस वचन को सुनाने से बच रहा हूँ जिसे सुनाना आवश्यक है, क्योंकि लोग उसे सुनना नहीं चाहते?” विश्वासी को भी पूछना चाहिए: “क्या मैं केवल वही वचन खोज रहा हूँ जिसे मैं सुनना चाहता हूँ?” “क्या मुझे सांत्वना देने वाला वचन तो अच्छा लगता है, लेकिन मुझे डाँटने वाले वचन को मैं अस्वीकार करता हूँ?” “क्या मैं परमेश्वर के वचन से अधिक उस उपदेशक पर निर्भर हूँ जो वही कहता है जिसे मैं सुनना चाहता हूँ?” और घर तथा कार्यस्थल में भी हमें पूछना चाहिए: “क्या मैं अपनी गलती छिपाने के लिए तथ्य बदल रहा हूँ?” “क्या मैं अपने लाभ के लिए किसी वादे का अर्थ बदलकर समझा रहा हूँ?” “क्या मैं अपनी गलती का दोष किसी दूसरे व्यक्ति पर डाल रहा हूँ?” झूठ को रिक्त करना दूसरों के झूठ को उजागर करने का अभियान नहीं है। यह सबसे पहले अपने भीतर के झूठ को परमेश्वर के वचन के सामने प्रकट करके उसे रिक्त करना है।

निष्कपट विश्वास अपने संदेहों को भी ईमानदारी से परमेश्वर के सामने लाता है

2 तीमुथियुस 1:5 में पौलुस तीमुथियुस के भीतर के “निष्कपट विश्वास” की बात करता है। निष्कपट विश्वास का अर्थ ऐसा विश्वास नहीं है जो कभी डगमगाता ही नहीं। न ही इसका अर्थ यह है कि केवल वही व्यक्ति सच्चा विश्वास रखता है जिसके भीतर कोई भय या संदेह नहीं है। बल्कि निष्कपट विश्वास वह विश्वास है जो अपनी कमजोरी तक को ईमानदारी से परमेश्वर के सामने ले आता है। यदि हमारे लिए विश्वास करना कठिन हो रहा है, तो केवल दूसरों को यह दिखाने के लिए कि हमारा विश्वास बहुत अच्छा है, हमें यह कहने की आवश्यकता नहीं है: **“मुझे बिल्कुल डर नहीं लगता।”** यदि कठिनाई है, तो हम कह सकते हैं कि कठिनाई है। यदि हम डरते हैं, तो हम स्वीकार कर सकते हैं कि हम डरते हैं। यदि संदेह उठता है, तो हम उस संदेह को भी परमेश्वर के पास ले जा सकते हैं। और उसी स्थान पर हम फिर से परमेश्वर की प्रतिज्ञा को थाम सकते हैं। अब्राहम का विश्वास भी अपनी क्षमता पर विश्वास नहीं था। रोमियों 4:21 कहता है कि उसे पूरा निश्चय था कि परमेश्वर ने जो प्रतिज्ञा की है, उसे पूरा करने में भी वह समर्थ है। सच्चा विश्वास ऐसा आत्मविश्वास नहीं है जो कहता है: **“मैं कर सकता हूँ।”** यह परमेश्वर पर ऐसा भरोसा है जो कहता है: **“मैं नहीं कर सकता, लेकिन परमेश्वर विश्वासयोग्य हैं।”** इसलिए निष्कपट विश्वास ऐसा विश्वास नहीं है जो स्वयं को एक मजबूत व्यक्ति के रूप में दिखाने की कोशिश करता है, बल्कि ऐसा विश्वास है जो अपनी कमजोरी को स्वीकार करते हुए भी परमेश्वर की विश्वासयोग्यता को थामे रहता है।

“झूठ” को रिक्त करने के सिद्धांत और व्यावहारिक दिशानिर्देश

तो फिर हम अपने घर, कलीसिया और कार्यस्थल में झूठ को कैसे रिक्त करते जाएँ? झूठ अक्सर किसी दिन अचानक एक बड़े झूठ से शुरू होने के बजाय छोटे-छोटे समझौतों को बार-बार दोहराने के द्वारा हमारे हृदय में जगह बना लेता है। इसलिए हमें हर दिन परमेश्वर के वचन के सामने स्वयं को जाँचना और छोटी बातों में भी सत्य को चुनने का अभ्यास करना चाहिए। हम निम्नलिखित पाँच बातों को अपने जीवन में लागू कर सकते हैं।

1. परमेश्वर के वचन को सत्य का मापदंड बनाइए

मेरे विचार और मेरी भावनाएँ हमेशा सही नहीं होतीं। जिस बात की मैं बहुत तीव्र इच्छा करता हूँ, वह भी परमेश्वर की इच्छा से अलग हो सकती है। इसलिए मुझे अपने विचारों को परमेश्वर के वचन के ऊपर नहीं, बल्कि उसके अधीन रखना चाहिए। विशेष रूप से पास्टर को सावधान रहना चाहिए कि वह अपने विचारों को आसानी से परमेश्वर की इच्छा न कह दे। उपदेश देते समय उसे पहले यह देखना चाहिए कि बाइबिल का पाठ वास्तव में क्या कह रहा है, और अपने विचारों को जबरदस्ती पवित्रशास्त्र में नहीं डालना चाहिए। विश्वासियों को भी केवल इसलिए किसी बात को बिना जाँचे स्वीकार नहीं करना चाहिए कि वह किसी प्रसिद्ध व्यक्ति ने कही है। उन्हें पवित्रशास्त्र के द्वारा उसकी जाँच करने की आदत डालनी चाहिए। मनुष्य की बातों के बजाय परमेश्वर के वचन को सत्य का मापदंड बनाना झूठ को रिक्त करने का पहला कदम है।

2. छोटी बातों में भी तथ्य को वैसा ही बताइए जैसा वह है

झूठ छोटे समझौतों से शुरू होता है। हम जानबूझकर उस हिस्से को छोड़ सकते हैं जो हमारे लिए नुकसानदायक है, अपनी जिम्मेदारी कम करने के लिए कहानी को थोड़ा बदल सकते हैं, या दूसरे व्यक्ति पर अच्छा प्रभाव डालने के लिए तथ्यों को बढ़ा-चढ़ाकर बता सकते हैं। लेकिन सच्चा व्यक्ति तथ्य को नहीं बदलता, चाहे वह तथ्य उसके लिए नुकसानदायक ही क्यों न हो। घर में जब आपसे गलती हो जाए, तो बहाना मत बनाइए। आपको यह कहने में सक्षम होना चाहिए: “मुझसे गलती हुई।” कार्यस्थल में अपनी गलती छिपाने के लिए दोष किसी दूसरे

व्यक्ति पर मत डालिए। व्यवसाय में अनुबंधों और वादों को अपने लाभ के अनुसार बदलकर मत समझाइए। नुकसान उठाना पड़े, तब भी ईमानदारी को चुनिए।

3. किसी दूसरे व्यक्ति के बारे में बात आगे बढ़ाने से पहले तथ्यों की पुष्टि कीजिए

केवल स्वयं झूठ बनाना ही पाप नहीं है। बिना जाँची हुई बात को सत्य की तरह आगे पहुँचाना भी दूसरे व्यक्ति को बहुत बड़ी हानि पहुँचा सकता है। यदि आप किसी व्यक्ति के बारे में कोई बुरी बात सुनें, तो उसे तुरंत दूसरों को न बताएँ। पहले पूछिए: **“क्या यह सच है?” “क्या मैंने स्वयं इसकी पुष्टि की है?” “क्या वास्तव में इस बात को आगे बताना आवश्यक है?”** विशेष रूप से कलीसिया के समुदाय में एक अफवाह किसी व्यक्ति के विश्वास, परिवार और प्रतिष्ठा को बहुत गंभीर नुकसान पहुँचा सकती है। यदि आप सत्य से प्रेम करते हैं, तो बोलने से पहले जाँच कीजिए; और यदि पुष्टि नहीं कर सकते, तो जल्दबाजी में उसे सत्य घोषित मत कीजिए।

4. कार्यस्थल और व्यवसाय में ईमानदारी और पारदर्शिता बनाए रखिए

झूठ को रिक्त करने का सबसे व्यावहारिक क्षेत्र उन कार्यस्थलों में से एक है जहाँ धन और लाभ का लेन-देन होता है। थोड़ा अधिक लाभ प्राप्त करने के लिए अनुबंध का अर्थ नहीं बदलना चाहिए, महत्वपूर्ण तथ्यों को नहीं छिपाना चाहिए, और दूसरे व्यक्ति की अनभिज्ञता का लाभ उठाकर अनुचित लाभ नहीं कमाना चाहिए। जो वादा किया है, उसे पूरा कीजिए। जो गलत किया है, उसे स्वीकार कीजिए। जिस बात की जिम्मेदारी आपकी है, उसकी जिम्मेदारी लीजिए। कभी-कभी ईमानदार रहने से ऐसा लग सकता है कि हमें तत्काल नुकसान हो रहा है। लेकिन एक विश्वासी के लिए सफलता से अधिक महत्वपूर्ण परमेश्वर के सामने विश्वासयोग्यता है। लाभ प्राप्त करने के लिए सत्य को मत छोड़िए। जब सत्य को बनाए रखने के लिए लाभ छोड़ना पड़े, तब परमेश्वर पर भरोसा कीजिए।

5. जब आपकी गलती प्रकट हो जाए, तब बहाने के बजाय पश्चाताप को चुनिए

झूठ अपनी गलती को छिपाने के लिए एक और झूठ पैदा करता है। शुरू में हम एक छोटी गलती छिपाने के लिए झूठ बोलते हैं, लेकिन उस झूठ को बचाने के लिए फिर एक और झूठ की आवश्यकता पड़ती है। इसलिए जब आपकी गलती प्रकट हो जाए, तो अपने आप को बचाने के लिए उसमें और झूठ मत जोड़िए। उसे स्वीकार कीजिए। क्षमा माँगिए। यदि आवश्यक हो, तो उसे सुधारिए। और परमेश्वर के सामने पश्चाताप कीजिए। अपनी गलती स्वीकार

करना शर्म की बात नहीं है। बल्कि अपनी गलती जानते हुए भी उसे अंत तक छिपाना और झूठ के द्वारा स्वयं को बचाने का प्रयास करना आत्मा को और गहरे बंधन में ले जाता है। पश्चाताप कर पाना अनुग्रह है। लेकिन हमें यह नहीं सोचना चाहिए कि केवल इन पाँच बातों का अभ्यास करके हम अपने हृदय के सारे झूठ को दूर कर सकते हैं। हमें परमेश्वर के अनुग्रह और पवित्र आत्मा की सहायता की आवश्यकता है। क्योंकि झूठ केवल दूसरों को धोखा देने पर समाप्त नहीं होता; वह स्वयं हमें भी धोखा दे सकता है। हम अपनी इच्छाओं को परमेश्वर की इच्छा समझने की भूल कर सकते हैं और अपने विचारों को सत्य मान सकते हैं। इसलिए हमें प्रतिदिन प्रार्थना करनी चाहिए कि पवित्र आत्मा परमेश्वर के वचन के द्वारा हमारे हृदय को प्रकाशित करे। हम इस प्रकार प्रार्थना कर सकते हैं: **“प्रभु, मेरे भीतर के झूठ को मुझे दिखाइए। अपने लाभ और अपनी प्रतिष्ठा बचाने के लिए मुझे सत्य को छिपाने या बदलने न दीजिए। मुझे केवल वही वचन खोजने न दीजिए जिसे मैं सुनना चाहता हूँ, बल्कि मुझे आपके वचन के सामने ईमानदारी से खड़ा होने दीजिए। मुझे अपने विचारों को आपकी इच्छा बताने से बचाइए, और जिसे आपका वचन सौंपा गया है, ऐसे व्यक्ति के रूप में मुझे आपके वचन को सही रीति से सुनाने में सहायता कीजिए। घर, कलीसिया और कार्यस्थल में चाहे मुझे नुकसान ही क्यों न उठाना पड़े, फिर भी मुझे सत्य चुनने दीजिए; और जब मैं गलत करूँ, तब बहाना बनाने के बजाय अपनी गलती स्वीकार करने और पश्चाताप करने में मेरी सहायता कीजिए। मेरे हृदय को झूठ से रिक्त कीजिए और उसे मसीह के सत्य से भर दीजिए।”**

झूठ को रिक्त करने का अर्थ केवल अपनी बातों के प्रति सावधान रहना नहीं है। झूठ को रिक्त करना उस जीवन को त्यागना है जिसमें मैं अपनी इच्छानुसार “सत्य” बनाता हूँ, और स्वयं को परमेश्वर के सत्य के अधीन रखना है। इसका अर्थ है अपने लाभ के लिए तथ्यों को न बदलना, लोगों की तालियाँ पाने के लिए परमेश्वर के वचन को न बदलना, और अपनी गलती छिपाने के लिए किसी दूसरे व्यक्ति को बलिदान न करना। पास्टर को अपनी बात को परमेश्वर का वचन नहीं बनाना चाहिए। विश्वासी को मनुष्य की बात को परमेश्वर के वचन से ऊपर नहीं रखना चाहिए। घर में हमें बहानों के बजाय ईमानदारी चुननी चाहिए। कार्यस्थल में हमें लाभ के बजाय सत्य चुनना चाहिए। कलीसिया में हमें अफवाहों के बजाय तथ्यों की पुष्टि करनी चाहिए। और जब हमसे गलती हो जाए, तब झूठ के द्वारा स्वयं को बचाने के बजाय क्रूस के सामने पश्चाताप करना चाहिए। रिक्त करने का उद्देश्य ऐसा व्यक्ति बनना नहीं है जिसके भीतर कुछ भी न हो। इसका उद्देश्य हृदय के उस स्थान को रिक्त करना है जिस पर झूठ ने अधिकार कर लिया था, और उस स्थान को यीशु मसीह से भरना है, जो स्वयं सत्य हैं। यीशु ने कहा: **“मार्ग और सत्य और जीवन मैं ही हूँ।”** इसलिए झूठ को रिक्त करने का अंतिम उद्देश्य केवल ऐसा “व्यक्ति बनना नहीं है जो झूठ नहीं बोलता।” इसका उद्देश्य मसीह से प्रेम करने वाला व्यक्ति बनना है, जो स्वयं सत्य हैं, और उनके वचन में सच्चाई से जीवन जीना है। झूठ स्वयं को बचाने के लिए सत्य को बदलता है, **लेकिन विश्वास स्वयं को परमेश्वर के हाथों में सौंपकर सत्य को चुनता है।** झूठ लोगों की प्रतिक्रिया से डरता है, **लेकिन सच्चा विश्वास परमेश्वर की दृष्टि को अधिक महत्वपूर्ण मानता है।**

झूठ अपनी गलती छिपाता है, लेकिन सुसमाचार हमें अपना पाप स्वीकार करने और क्रूस के अनुग्रह को थामने की ओर ले जाता है। इसलिए हमें हर दिन स्वयं से पूछना चाहिए: “क्या मैं अभी सत्य बोल रहा हूँ?” “क्या मैं परमेश्वर के वचन को वैसा ही स्वीकार कर रहा हूँ जैसा वह है?” “क्या मैं अपने लाभ से अधिक सत्य से प्रेम करता हूँ?” और जब भी हमें अपने भीतर झूठ दिखाई दे, हमें उसे छिपाना नहीं चाहिए, बल्कि क्रूस के सामने ले जाना चाहिए। इस प्रकार एक-एक करके झूठ को रिक्त करना और उस स्थान को मसीह के सत्य से भरते जाना—यही “झूठ को रिक्त करने” का वह मार्ग है जिस पर हमें अपने घर, कलीसिया और कार्यस्थल में हर दिन चलना है।

अध्याय 8:

“घृणा” को रिक्त करना

पिछले अध्याय में हमने देखा कि अपने लाभ के लिए सत्य को छिपाने या बदलने वाले “झूठ” को हमें कैसे रिक्त करना चाहिए। अब अध्याय 8 में हम एक और पाप पर विचार करेंगे जो हमारे हृदय और संबंधों को गहराई से नष्ट करता है—“घृणा।” जीवन में हमें चोट पहुँचती है। कभी निकट के लोग हमें धोखा देते हैं, कभी हमारे साथ अन्याय होता है, और कभी हमें लगता है कि हमें प्रेम नहीं मिला। किसी के शब्दों और कार्यों के कारण हमारे भीतर गहरा क्रोध भी उत्पन्न हो सकता है। चोट लगना अपने आप में पाप नहीं है। अन्याय होने पर दुःख और क्रोध अनुभव करना स्वाभाविक प्रतिक्रिया हो सकती है। प्रश्न यह है कि हम उस चोट और क्रोध के साथ क्या करते हैं। यदि हम चोट को पकड़े रहते हैं, दूसरे व्यक्ति से घृणा करते हैं, उसके बुरे होने की कामना करते हैं और जितना हमने सहा उतना ही उसे लौटाने की इच्छा पालते हैं, तो एक समय ऐसा आता है जब घृणा हमारे हृदय पर शासन करने लगती है। 1 यूहन्ना 3:15 कहता है कि **“जो कोई अपने भाई से बैर रखता है, वह हत्यारा है।”** भले ही हमने किसी को वास्तव में न मारा हो, यदि हम अपने हृदय में लगातार उसे दोषी ठहराते, शाप देते और उसकी दुर्दशा चाहते हैं, तो परमेश्वर ऐसे हृदय को हल्के में नहीं लेते। इसलिए घृणा को रिक्त करना भावनाओं को जबरदस्ती मिटाना नहीं है। इसका अर्थ है अपनी चोट और क्रोध को परमेश्वर के सामने लाकर रिक्त करना, ताकि वे हमारे हृदय के स्वामी न बनें।

कैन और हाबिल: घृणा को रिक्त न कर पाने की त्रासदी

उत्पत्ति 4 में कैन और हाबिल की कहानी बाइबल की उन पहली घटनाओं में से है जो दिखाती हैं कि घृणा कितने भयानक परिणाम ला सकती है। कैन और हाबिल दोनों ने परमेश्वर को भेंट चढ़ाई। परमेश्वर ने हाबिल और उसकी भेंट को स्वीकार किया, लेकिन कैन और उसकी भेंट को स्वीकार नहीं किया। कैन बहुत क्रोधित हुआ और उसका चेहरा उतर गया। परमेश्वर कैन के हृदय को जानते थे। उन्होंने उसे चेतावनी दी कि पाप द्वार पर दुबका है, उसकी इच्छा कैन पर है, लेकिन कैन को उस पर प्रभुता करनी चाहिए। फिर भी कैन ने परमेश्वर की चेतावनी स्वीकार नहीं की। अपने हृदय को देखने के बजाय उसने हाबिल की ओर देखा। परमेश्वर के सामने अपनी समस्या से निपटने के बजाय उसने अपने छोटे भाई पर क्रोध किया। अंततः उसके हृदय में बढ़ी घृणा हत्या में बदल गई। यहाँ हम घृणा की एक महत्वपूर्ण विशेषता

देखते हैं। घृणा अचानक एक दिन पूरी तरह तैयार नहीं हो जाती। आरम्भ में यह छोटी-सी चोट हो सकती है। चोट लंबे समय तक जमा हो तो शिकायत बनती है। शिकायत को पकड़े रहने पर वह क्रोध बनती है, और क्रोध को रिक्त न किया जाए तो वह कठोर होकर घृणा बन सकता है। अंततः घृणा हमारे शब्दों और कार्यों को नियंत्रित करने लगती है। इसलिए घृणा छोटी अवस्था में ही संभालनी चाहिए। हृदय में चोट और क्रोध उत्पन्न होने पर उसे “कोई बड़ी बात नहीं” कहकर छोड़ न दें, बल्कि परमेश्वर के सामने उसकी जाँच करें। हम हमेशा घृणा के बीज को हृदय में प्रवेश करने से रोक नहीं सकते, लेकिन उसे जड़ पकड़ने और बढ़ने नहीं देना चाहिए।

घृणा बदला लेने की इच्छा में बढ़ती है

उत्पत्ति 27 में, याकूब द्वारा अपने पिता इसहाक की आशीष प्राप्त करने के बाद एसाव ने अपने छोटे भाई को मार डालने का विचार किया। चोट घृणा बनी और घृणा बदले की भावना में बदल गई। चोट लगने पर हमारे मन में भी ऐसे विचार आ सकते हैं: **“मैं भी उसी तरह बदला लेना चाहता हूँ।” “काश वह भी उतना ही भुगते जितना मैंने भुगता।” “एक दिन मैं उससे इसकी कीमत अवश्य चुकवाऊँगा।”** लेकिन उस समय हमें याद रखना चाहिए: मैं अंतिम न्यायी नहीं हूँ। गलत को गलत कहना उचित है। आवश्यक हो तो जिम्मेदारी भी तय करनी पड़ सकती है। अपराध या हिंसा हुई हो तो सुरक्षा और उचित कानूनी प्रक्रिया आवश्यक हो सकती है। क्षमा न्याय को छोड़ देना नहीं है। लेकिन दूसरे व्यक्ति का अंतिम न्याय करने और स्वयं बदला लेने का अधिकार मुझे अपने हाथ में नहीं रखना चाहिए। रोमियों 12:19 हमें बदला परमेश्वर पर छोड़ने को कहता है। घृणा को रिक्त करने का अर्थ यह नहीं कि हम गलत को ऐसा मान लें मानो वह हुआ ही नहीं। इसका अर्थ है न्यायी बनकर स्वयं बदला लेने की इच्छा को रिक्त करना और बात को परमेश्वर के न्याय पर छोड़ देना।

तुलना और ईर्ष्या घृणा में बदल सकती हैं

राजा शाऊल के जीवन में भी हम घृणा के बढ़ने की प्रक्रिया देखते हैं। दाऊद के गोलियत को हराकर लौटने पर लोगों ने गीत गाते हुए उसे शाऊल से अधिक सम्मान दिया। शाऊल ने उन शब्दों को अपने हृदय में रख लिया और दाऊद को देखने की उसकी दृष्टि बदल गई। तुलना ईर्ष्या बनी और ईर्ष्या अंततः घृणा में बदल गई। आखिरकार शाऊल ने दाऊद को मारने का प्रयास किया। जब कोई हमसे अधिक सम्मान पाता है तो हमें असुविधा हो सकती है। जब दूसरे के बच्चे हमारे बच्चों से अधिक सफल दिखते हैं, दूसरे पास्टर की कलीसिया अधिक बढ़ती है, कोई सहकर्मी हमसे पहले पदोन्नत होता है, या हमारी जगह किसी और की प्रशंसा होती है, तो तुलना और ईर्ष्या उत्पन्न हो सकती हैं। यदि इन्हें छोड़ दिया जाए तो हम उस व्यक्ति को ही नापसंद करने लगते हैं। उसकी किसी गलती के कारण नहीं, बल्कि केवल इसलिए कि

उसका अच्छा होना हमें अच्छा नहीं लगता। इसलिए पूछें: **“क्या मैं उसे इसलिए घृणा करता हूँ क्योंकि उसने वास्तव में गलत किया है?”** **“या इसलिए कि मैं अपनी तुलना उससे कर रहा हूँ और ईर्ष्या कर रहा हूँ?”** इन प्रश्नों के सामने ईमानदारी से स्वयं को जाँचें।

घृणा केवल हृदय में नहीं रहती

मत्ती 15:19 में यीशु ने कहा कि बुरे विचार, हत्या, व्यभिचार, झूठी गवाही और निन्दा हृदय से निकलते हैं। पाप कार्य बनने से पहले हृदय में बढ़ता है। इसलिए क्रोध उठते ही बोलना या कार्य करना उचित नहीं है। नीतिवचन 16:32 कहता है कि विलम्ब से क्रोध करने वाला वीर से उत्तम है और अपने मन पर शासन करने वाला नगर जीतने वाले से श्रेष्ठ है। भावनाएँ तीव्र हों तो कुछ समय रुकना चाहिए। उसी क्षण हर बात का निर्णय आवश्यक नहीं है। तुरंत संदेश या ईमेल भेजना आवश्यक नहीं है। क्रोध में जीवनसाथी या बच्चों पर हर बात उंडेलना आवश्यक नहीं है। क्रोध शांत होने तक प्रतीक्षा करें और पहले परमेश्वर के सामने अपने हृदय को जाँचें: **“मैं इतना क्रोधित क्यों हूँ?”** **“मैं वास्तव में क्या चाहता हूँ?”** **“क्या मैं उस व्यक्ति की बहाली चाहता हूँ, या अपनी चोट उसे लौटाना चाहता हूँ?”** यह आत्म-परीक्षण ही क्रोध को घृणा बनने से रोकने में सहायता करता है। क्रोध में रुकना कमजोरी नहीं, बल्कि आत्म-संयम की शक्ति है।

घृणा परिवार को नष्ट कर सकती है

घृणा के सबसे गहरे घाव परिवार में पड़ते हैं। परिवार के सदस्य सबसे निकट होते हैं, इसलिए वे सबसे गहरा प्रेम कर सकते हैं और सबसे गहरी चोट भी दे सकते हैं। 2 शमूएल 13 में अमोन और तामार की घटना दिखाती है कि स्वार्थी इच्छा कितनी भयानक चोट और घृणा पैदा कर सकती है। अमोन की भावना सच्चा प्रेम नहीं, बल्कि अपनी इच्छा पूरी करने वाली वासना थी। तामार का बलात्कार करने के बाद उसने उससे अत्यधिक घृणा की। सच्चा प्रेम दूसरे की भलाई चाहता है। स्वार्थी इच्छा दूसरे व्यक्ति को अपनी आवश्यकता पूरी करने की वस्तु बना देती है। अमोन का पाप वहीं समाप्त नहीं हुआ। उस घटना ने दाऊद के परिवार में गहरी चोट उत्पन्न की और अंततः अबशालोम के बदले का कारण बनी। एक व्यक्ति के पाप और घृणा ने दूसरी घृणा और बदला उत्पन्न किया। घृणा अकेली नहीं रहती। परिवार में रिक्त न की गई घृणा जीवनसाथी और कभी-कभी बच्चों तक पहुँच सकती है।

पति-पत्नी की चोट बच्चों को न दें

उत्पत्ति 29 में लिआ ने अपने पति याकूब से प्रेम न मिलने का दुःख सहा। उसके बच्चों के नामों में भी पति से प्रेम पाने की उसकी लालसा दिखाई देती है। जीवनसाथी से प्रेम और मान्यता न मिलने से हृदय में गहरी चोट हो सकती है। लेकिन उस चोट को बच्चों के द्वारा भरने की कोशिश नहीं करनी चाहिए। वैवाहिक संघर्ष में बच्चों को अपनी ओर करना, जीवनसाथी की गलतियाँ लगातार बच्चों को बताना, या जीवनसाथी से न मिले भावनात्मक सहारे को बच्चों से अत्यधिक माँगना उन्हें माता-पिता के संघर्ष में खींच सकता है। बच्चे माता-पिता का अकेलापन भरने के लिए नहीं हैं। पति-पत्नी की समस्याएँ जहाँ तक संभव हो, दोनों को परमेश्वर के सामने मिलकर संभालनी चाहिए। जीवनसाथी के प्रति शिकायत बच्चों को मत दीजिए। उन्हें दूसरे माता-पिता से घृणा करने का कारण मत दीजिए। मेरी चोट अगली पीढ़ी की चोट न बने। घृणा को रिक्त करना अपने हृदय के लिए भी है और अगली पीढ़ी की रक्षा के लिए भी।

यूसुफ से घृणा की गई, पर उसने घृणा से जीवन नहीं जिया

उत्पत्ति 37 में यूसुफ के भाइयों ने देखा कि पिता यूसुफ से अधिक प्रेम करता है और वे उससे घृणा करने लगे। तुलना ने ईर्ष्या और ईर्ष्या ने घृणा पैदा की। उन्होंने यूसुफ को गढ़े में फेंका और मिस्र जाने वाले व्यापारियों को बेच दिया। यूसुफ को अपने परिवार ने त्याग दिया। उसके पास घृणा करने के पर्याप्त कारण थे। फिर भी उसने भाइयों की बुराई को अपने जीवन का नियंत्रक केंद्र नहीं बनाया। उत्पत्ति 39:21 कहता है कि जेल में भी प्रभु यूसुफ के साथ था। मनुष्यों ने उसे छोड़ा, लेकिन परमेश्वर ने नहीं छोड़ा। यह विश्वास महत्वपूर्ण है। मनुष्यों द्वारा घृणा किया जाना परमेश्वर द्वारा त्यागा जाना नहीं है। किसी का मुझे गलत समझना यह नहीं कि परमेश्वर भी मुझे गलत समझते हैं। किसी का मेरे साथ बुरा करना उसे मेरे जीवन का अंतिम निर्णय देने का अधिकार नहीं देता। बाद में यूसुफ अपने भाइयों से फिर मिला। उसके पास बदला लेने की शक्ति थी। लेकिन उसने बदला नहीं लिया। उत्पत्ति 50:20 में उसने कहा: **“तुमने मेरे विरुद्ध बुराई की योजना की थी, परन्तु परमेश्वर ने उसे भलाई के लिए किया।”** उसने भाइयों की बुराई को भलाई नहीं कहा। उसने स्पष्ट कहा कि उन्होंने उसे हानि पहुँचानी चाही। लेकिन उसने उस बुराई से बड़े परमेश्वर की प्रभुता को देखा। घृणा को रिक्त करने के लिए यह विश्वास अत्यंत महत्वपूर्ण है। क्षमा बुराई को भलाई कहना नहीं, बल्कि बुराई से बड़े परमेश्वर पर विश्वास करना है।

घृणा मिलने पर घृणा से उत्तर न दें

यीशु ने कहा कि संसार उनके चेलों से घृणा कर सकता है। यूहन्ना 15 में उन्होंने कहा कि संसार ने उनसे घृणा की, इसलिए चेलों से भी करेगा। इसलिए किसी का मुझसे घृणा करना यह सिद्ध नहीं करता कि मैं अवश्य गलत मार्ग पर

हूँ। महत्वपूर्ण यह है कि घृणा मिलने पर मैं क्या चुनता हूँ। यदि दूसरा मुझसे घृणा करे और मैं भी उससे घृणा करने लगूँ, तो उसकी फेंकी हुई घृणा को अपने हृदय में स्वीकार कर लेता हूँ। इब्रानियों 12:3 हमें यीशु पर विचार करने को कहता है जिन्होंने पापियों का विरोध सहा। केवल विरोधी को देखते रहने से हृदय कठोर हो सकता है। लेकिन क्रूस पर हमारे लिए सहने वाले यीशु को देखकर हम दूसरा मार्ग चुन सकते हैं: बुराई का बदला बुराई से नहीं, अपमान का अपमान से नहीं, और घृणा का घृणा से नहीं।

क्षमा का अर्थ है घृणा को हृदय पर शासन न करने देना

पतरस ने यीशु से पूछा कि भाई के पाप करने पर कितनी बार क्षमा करे। यीशु ने कहा केवल सात बार नहीं, बल्कि सत्तर गुणा सात बार। यह क्षमा की संख्या गिनने की शिक्षा नहीं, बल्कि निरंतर क्षमा करना सीखने की शिक्षा है। लेकिन क्षमा को गलत न समझें। क्षमा का अर्थ यह नहीं कि दूसरे का गलत कार्य गलत नहीं था। यह ऐसे जीना नहीं मानो चोट लगी ही नहीं। यह अपराध छिपाना नहीं है। यह नहीं कि भरोसा तुरंत लौट आए। और यह भी नहीं कि हर संबंध पहले जैसा ही होना चाहिए। आवश्यक हो तो स्वस्थ सीमाएँ स्थापित करनी चाहिए। बार-बार हिंसा या गंभीर हानि की स्थिति में सुरक्षा सुनिश्चित करना और उचित सहायता लेना आवश्यक हो सकता है। क्षमा और मेल-मिलाप में भी अंतर है। क्षमा मैं परमेश्वर के सामने आरम्भ कर सकता हूँ, लेकिन संबंध के पूर्ण मेल-मिलाप के लिए दूसरे व्यक्ति का सच्चा पश्चाताप और परिवर्तन आवश्यक हो सकता है। इसलिए क्षमा दूसरे के पाप को उचित ठहराना नहीं, बल्कि उसका अंतिम न्याय परमेश्वर को सौंपना और घृणा तथा बदले को अपने हृदय पर शासन न करने देना है।

क्षमा का सबसे बड़ा उदाहरण क्रूस है

घृणा को रिक्त करने का सबसे गहरा स्थान अंततः क्रूस है। यीशु ने उन्हें शाप नहीं दिया जिन्होंने उन्हें क्रूस पर चढ़ाया। उन्होंने प्रार्थना की: **“हे पिता, इन्हें क्षमा कर।”** क्रूस दिखाता है कि हमने कैसा प्रेम पाया है। हम इसलिए नहीं बचाए गए कि हमने पहले परमेश्वर से प्रेम किया। मसीह इसलिए नहीं मरे कि हम प्रेम के योग्य थे। जब हम पापी ही थे, मसीह हमारे लिए मरे। दूसरों को क्षमा करने की शक्ति यह समझने से आती है कि हमें कितनी बड़ी क्षमा मिली है। यदि केवल पूछें: **“क्या वह व्यक्ति क्षमा पाने योग्य है?”** तो क्षमा कठिन होगी। लेकिन क्रूस के सामने प्रश्न बदलता है: **“मुझे**

परमेश्वर से कितनी बड़ी क्षमा मिली है?” उस अनुग्रह को याद करते हुए हम पकड़ी हुई घृणा को धीरे-धीरे रिक्त कर सकते हैं। क्योंकि मैं क्षमा पाया हुआ व्यक्ति हूँ, इसलिए दूसरों को क्षमा करना सीखता हूँ।

घृणा रिक्त होने पर प्रेम फिर बहने लगता है

नीतिवचन 10:12 कहता है: **“बैर से झगड़े उत्पन्न होते हैं, परन्तु प्रेम सब अपराधों को ढाँप देता है।”** अपराध ढाँपना पाप छिपाना या गलत को स्वीकार करना नहीं है। इसका अर्थ है दूसरे की कमजोरी और गलती को पकड़कर स्वयं को ऊँचा उठाने का साधन न बनाना। प्रेम पुरानी गलतियों को जमा करके हर झगड़े में हथियार की तरह नहीं निकालता। प्रेम परमेश्वर के अनुग्रह को याद करता है और दूसरों को भी अनुग्रह देना चाहता है। इसलिए घृणा को रिक्त करना निकटतम संबंधों से आरम्भ करें। जीवनसाथी के प्रति पुराने दुःख देखें। माता-पिता से मिली चोट परमेश्वर के पास लाएँ। भाई-बहनों के प्रति प्रतिस्पर्धा और शिकायत देखें। कलीसिया की चोट और लोगों से निराशा प्रभु के पास लाएँ। कार्यस्थल में कठिनाई देने वाले व्यक्ति के प्रति क्रोध भी परमेश्वर से कहें। घृणा मत छिपाइए। लेकिन उसे पकड़े हुए भी मत जीइए। एक-एक करके परमेश्वर के सामने रिक्त कीजिए। और उस स्थान को मसीह के प्रेम से भरिए।

“घृणा” को रिक्त करने के सिद्धांत और व्यावहारिक दिशानिर्देश

घर, कलीसिया और कार्यस्थल में घृणा को व्यावहारिक रूप से कैसे रिक्त करें? घृणा एक निर्णय से पूरी तरह समाप्त न हो सकती है। पुरानी चोट फिर याद आ सकती है, और जिसे हमने क्षमा किया समझा था वह फिर दुख दे सकती है। तब यह न सोचें कि आप असफल हो गए। उसे फिर परमेश्वर के पास ले जाएँ। घृणा को रिक्त करना एक बार का भावनात्मक निर्णय नहीं, बल्कि जब-जब चोट और क्रोध उठें, उन्हें परमेश्वर को सौंपकर प्रेम चुनने की प्रक्रिया है।

1. घृणा का बीज मिलते ही परमेश्वर के सामने उससे निपटें

छोटी चोट को हल्का न समझें। यदि किसी को लगातार सोचते हुए क्रोध बढ़ रहा है, तो उसे परमेश्वर के सामने लाएँ। “प्रभु, मैं उस व्यक्ति से घृणा करता हूँ।” “उस घटना को सोचकर अभी भी क्रोध आता है।” “मेरे भीतर यह इच्छा भी है कि उसके साथ बुरा हो।” परमेश्वर के सामने ईमानदारी से स्वीकार करें। घृणा न होने का अभिनय करना उसे रिक्त करना नहीं है। पहले उसे स्वीकार करना आवश्यक है।

2. क्रोध बहुत अधिक हो तो तुरंत न बोलें और न कार्य करें

क्रोध में शब्दों और कार्यों से सावधान रहें। तुरंत संदेश या ईमेल न भेजें। जीवनसाथी पर सब कुछ न उड़ेलें। बच्चों पर क्रोध न बरसाएँ। कार्यस्थल में क्रोध में महत्वपूर्ण निर्णय न लें। रुकें और प्रार्थना करें। आवश्यक हो तो दूरी लेकर शांत होने का समय दें। फिर प्रेम में सत्य बोलें। क्रोध दबाना और क्रोध से नियंत्रित न होना अलग बातें हैं। भावना से इनकार न करें, लेकिन उसे अपने शब्द और कार्य तय न करने दें।

3. बदले की इच्छा परमेश्वर को सौंपें

यह विचार रिक्त करें कि आपको स्वयं दूसरे से बदला लेना ही है। जिम्मेदारी तय करना और बदला लेना अलग हैं। न्याय आवश्यक हो तो उचित तरीके अपनाएँ। लेकिन दूसरे को नष्ट करना अपने जीवन का लक्ष्य न बनाएँ। प्रार्थना

करें: “परमेश्वर, मैं न्यायी नहीं बनूँगा। यह बात आपके न्याय को सौंपता हूँ।” घृणा को रिक्त करने का महत्वपूर्ण क्षण वह है जब हम न्यायी का स्थान परमेश्वर को वापस देते हैं।

4. परिवार की चोट दूसरे परिवारजनों तक न पहुँचाएँ

जीवनसाथी की चोट बच्चों पर न निकालें। बच्चों को अपना पक्ष लेने पर मजबूर न करें। बच्चों की तुलना करके पक्षपात न करें। माता-पिता से मिली चोट को जीवनसाथी पर न दोहराएँ। परिवार में किसी को घृणा की धारा रोकनी होगी। यह न कहें: “मेरे माता-पिता भी ऐसे थे, इसलिए मैं कुछ नहीं कर सकता।” मसीह में हम अलग चुनाव कर सकते हैं। अपनी चोट अगले व्यक्ति तक न पहुँचाना और अपनी पीढ़ी में घृणा की धारा रोकना रिक्त करने का महत्वपूर्ण अभ्यास है।

5. जिसने चोट पहुँचाई उसके लिए प्रार्थना करें

यीशु ने शत्रुओं से प्रेम और सताने वालों के लिए प्रार्थना करने को कहा। आरम्भ में यह हृदय से न आए। फिर भी प्रार्थना करें। ईमानदारी से कहें: “प्रभु, अभी मेरे भीतर इस व्यक्ति को आशीष देने की इच्छा नहीं है। फिर भी मेरे हृदय पर शासन कीजिए।” प्रार्थना का अर्थ यह नहीं कि तुरंत उस व्यक्ति के निकट जाना आवश्यक है। लेकिन उसे लगातार शाप देने से मुक्त होकर परमेश्वर को सौंपने का अभ्यास किया जा सकता है। आँसुओं से शुरू हुई प्रार्थना एक दिन करुणा की प्रार्थना बन सकती है। फिर भी ये पाँच अभ्यास केवल हमारी शक्ति से पूरे नहीं होते। घृणा गहरी चोट से जुड़ी है, इसलिए “अब मैं घृणा नहीं करूँगा” कहने से तुरंत समाप्त नहीं होती। हमें पवित्र आत्मा की सहायता चाहिए। जब पवित्र आत्मा वचन के द्वारा हृदय को प्रकाशित करे, तो घृणा न छिपाएँ, बल्कि स्वीकार करें। और क्रूस पर मिली क्षमा को फिर याद करें। हम प्रार्थना कर सकते हैं: “प्रभु, मेरे भीतर की घृणा दिखाइए। जिसने मुझे चोट पहुँचाई, उसके बारे में सोचते समय उठने वाले क्रोध, शिकायत और बदले की इच्छा को आपसे छिपाने न दीजिए। न्यायी बनने की इच्छा को रिक्त कर सब न्याय आपको सौंपने दीजिए। मेरी चोट मेरे जीवनसाथी, बच्चों या दूसरों तक न पहुँचे, और मुझे घृणा का उत्तर घृणा से न देने दीजिए। क्रूस पर मुझे क्षमा करने वाले प्रभु के प्रेम को गहराई से समझाइए और घृणा से रिक्त मेरे हृदय को मसीह के प्रेम से भर दीजिए।”

घृणा को रिक्त करना ऐसा जीना नहीं मानो चोट कभी लगी ही नहीं। गलत को गलत न कहना भी नहीं है। इसका अर्थ है जिसने चोट पहुँचाई उसे मेरे हृदय का स्वामी न बनने देना। दूसरे की गलती के कारण अपने हृदय को जीवन भर क्रोध और शिकायत में बँधा न रहने देना। न्यायी बनने की इच्छा रिक्त करके परमेश्वर के न्याय को सौंपना। और उस

खाली स्थान को मसीह के प्रेम और क्षमा से भरना। कैन की घृणा रिक्त करनी है। एसाव का बदला रिक्त करना है। शाऊल की ईर्ष्या और घृणा रिक्त करनी है। यूसुफ की तरह मनुष्य की बुराई से बड़े परमेश्वर के हाथ को देखना है। और सबसे बढ़कर क्रूस पर अपने घृणा करने वालों को भी क्षमा करने वाले यीशु को देखना है। घृणा कहती है: **“मुझे बदला लेना है।”** विश्वास कहता है: **“मैं इसे परमेश्वर को सौंपूँगा।”** घृणा चोट पकड़े रखती है, पर प्रेम क्रूस को पकड़े रखता है। इसलिए प्रतिदिन पूछें: **“मैं अभी भी किससे घृणा करता हूँ?”** **“कौन-सी चोट मैं छोड़ नहीं पा रहा और बार-बार सोचता हूँ?”** **“क्या कोई है जिसे मैं स्वयं न्याय करके कीमत चुकवाना चाहता हूँ?”** **“क्या अपनी चोट जीवनसाथी या बच्चों तक पहुँचा रहा हूँ?”** उस नाम और चोट को परमेश्वर के सामने लाएँ। एक-एक करके रिक्त करें। रिक्त करने का उद्देश्य खाली व्यक्ति बनना नहीं है। घृणा से खाली हुए स्थान को मसीह के प्रेम से भरना है। ताकि हमारा घर, कलीसिया और कार्यस्थल घृणा की धारा नहीं, बल्कि मसीह के प्रेम की धारा बनें। **यही “घृणा को रिक्त करने” का मार्ग है जिस पर हमें प्रतिदिन चलना है।**

अध्याय 9:

“बुरे विचारों” को रिक्त करना

पिछले अध्याय में हमने इस बात पर विचार किया कि हमें अपने हृदय में जड़ जमा चुकी घृणा को कैसे रिक्त करना चाहिए और उस स्थान को मसीह के प्रेम और क्षमा से कैसे भरना चाहिए। अब हम एक कदम और गहराई में जाना चाहते हैं। हम अपने हृदय के “विचारों” को देखना चाहते हैं—वे विचार जो हमारे शब्दों और कार्यों से पहले उत्पन्न होते हैं, जिन्हें दूसरे लोग आसानी से नहीं देख सकते, परन्तु जिन्हें परमेश्वर देखता है।

हमारे मन में प्रतिदिन अनगिनत विचार आते हैं। सुबह आँखें खोलने से लेकर रात को सोने तक, दूसरों का न्याय करने और उनसे अपनी तुलना करने के विचार, चोट और घृणा की भावनाएँ, लालच और चिंता, घमण्ड और ईर्ष्या, तथा दूसरों से मान्यता पाने की इच्छा निरन्तर हमारे हृदय से होकर गुजरती रहती हैं। लेकिन यहाँ हमें एक महत्वपूर्ण भेद समझना चाहिए। किसी विचार का अचानक हमारे मन में आ जाना एक बात है, और उस विचार को अपने हृदय में स्वीकार करके लगातार पकड़े रहना दूसरी बात है। हमारी इच्छा के विरुद्ध भी कोई अनुचित विचार अचानक हमारे मन में आ सकता है। किसी से घृणा करने का विचार क्षण भर के लिए मन में आ सकता है, या किसी दूसरे व्यक्ति के प्रति ईर्ष्या की भावना उत्पन्न हो सकती है। महत्वपूर्ण बात यह नहीं है कि ऐसा विचार आते ही हम स्वयं को दोषी ठहराने लगें, बल्कि यह है कि हम उस विचार के साथ क्या करते हैं। यदि हम क्षण भर के लिए आए किसी विचार को पकड़ लेते हैं, बार-बार उसी के बारे में सोचते हैं, उसे अपने हृदय में पालते हैं, उसमें आनंद लेने लगते हैं और उसे उचित ठहराने लगते हैं, तो वह विचार धीरे-धीरे हमारे हृदय पर अधिकार करने लगता है। और जो विचार हृदय में बढ़ता रहता है, वह अन्ततः हमारे शब्दों और कार्यों को प्रभावित करता है। इसलिए “बुरे विचारों” को रिक्त करने का अर्थ ऐसा व्यक्ति बनना नहीं है जिसके मन में कोई विचार ही न आए। इसका अर्थ यह है कि जब कोई ऐसा विचार हमारे भीतर प्रवेश करे जो परमेश्वर को प्रसन्न नहीं करता, तब हम उसे अपने हृदय में स्वीकार करके न पालें, बल्कि परमेश्वर के वचन के सामने उसे परखें और उसे मसीह के अधीन कर दें।

बुरे विचार हृदय से आरम्भ होते हैं

जब यीशु ने इस विषय में बताया कि मनुष्य को क्या अशुद्ध करता है, तब उन्होंने मनुष्य के हृदय की गहराई की ओर संकेत किया। मत्ती 15:19 में प्रभु ने कहा कि हृदय से बुरे विचार, हत्या, व्यभिचार, यौन अनैतिकता, चोरी, झूठी गवाही और निन्दा निकलती हैं। मरकुस 7:21-23 में भी यीशु ने कहा कि विभिन्न प्रकार की बुराइयाँ मनुष्य के भीतर से, अर्थात् उसके हृदय से निकलती हैं। हम प्रायः पाप को सबसे पहले अपने कार्यों के आधार पर देखते हैं। क्या मैंने झूठ बोला? क्या मैंने किसी दूसरे की वस्तु चुराई? क्या मैंने किसी को चोट पहुँचाई? क्या मैंने कोई अनैतिक यौन कार्य किया? निस्सन्देह, हमारे कार्य महत्वपूर्ण हैं। लेकिन यीशु हमारे कार्यों से भी अधिक गहराई में देखते हैं। प्रभु उस हृदय को देखते हैं जहाँ से वे कार्य उत्पन्न होते हैं। याकूब 1:15 हमें बताता है कि अभिलाषा गर्भवती होकर पाप को जन्म देती है, और पाप बढ़कर मृत्यु को जन्म देता है। पाप किसी दिन अचानक एक कार्य के रूप में प्रकट नहीं हो जाता। यदि हमारे हृदय में कोई विचार प्रवेश करे और हम उसे लगातार वहीं रहने दें, तो वह इच्छा में बढ़ सकता है; और यदि हम उस इच्छा का अनुसरण करते रहें, तो अन्ततः वह हमारे कार्यों में प्रकट हो सकता है। इसलिए बुरे विचारों को रिक्त करना केवल उन कार्यों को सुधारना नहीं है जो पहले ही दिखाई दे चुके हैं। इसका अर्थ उस हृदय की दिशा को भी परमेश्वर के सामने जाँचना है जो उन कार्यों को उत्पन्न करती है।

परमेश्वर के सामने हम अपने विचार भी नहीं छिपा सकते

बुरे विचारों के खतरनाक होने का एक कारण यह है कि दूसरे लोग उन्हें आसानी से नहीं देख सकते। हम अपने हृदय में किसी से घृणा करते हुए भी उसके सामने मुस्कुरा सकते हैं। हम ईर्ष्या करते हुए भी उसे बधाई दे सकते हैं। हम अपने मन में किसी व्यक्ति की असफलता की कामना कर सकते हैं, जबकि बाहर से ऐसा व्यवहार कर सकते हैं जैसे हमें उसकी बहुत चिंता है। लोग हमारे हृदय की हर बात नहीं जान सकते। लेकिन हम परमेश्वर से कुछ नहीं छिपा सकते। मत्ती 9:4 में, जब शास्त्री अपने हृदय में यीशु के विषय में गलत विचार कर रहे थे, तब प्रभु ने उनके विचारों को जानकर कहा, “तुम अपने मन में बुरा विचार क्यों कर रहे हो?” उन्होंने अभी उन विचारों को अपने मुँह से कहा भी नहीं था। फिर भी यीशु पहले से जानते थे कि वे क्या सोच रहे हैं। यह हमारे सामने कुछ अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रश्न रखता है: **“जब कोई नहीं जानता, तब मैं क्या सोचता हूँ?” “क्या मैं अपने हृदय में बार-बार ऐसे विचारों को सोचता और उनका आनंद लेता हूँ जिन्हें मैं किसी दूसरे व्यक्ति को कभी नहीं बता सकता?” “मैं बाहर से जैसा दिखाई देता हूँ और परमेश्वर मेरे हृदय को जैसा देखते हैं—इन दोनों में कितनी समानता है?”** सच्ची पवित्रता केवल लोगों के सामने एक अच्छा व्यक्ति दिखाई देने तक सीमित नहीं है। सच्ची पवित्रता का अर्थ है कि हम अपने हृदय के उन स्थानों को भी परमेश्वर के सामने ले आएँ जिन्हें कोई दूसरा नहीं देख सकता।

बुरे विचार धार्मिक रूप में भी दिखाई दे सकते हैं

बुरे विचार हमेशा स्पष्ट पाप के रूप में दिखाई नहीं देते। कभी-कभी वे आत्मिक उत्साह जैसे भी दिखाई दे सकते हैं। **“मेरा विश्वास उस व्यक्ति से अधिक अच्छा है।” “मैं उस व्यक्ति से अधिक बाइबल जानता हूँ।” “उस व्यक्ति का विश्वास गलत है।” “मैं सही हूँ और वह व्यक्ति गलत है।”** ये बातें बाहर से आत्मिक निर्णय जैसी लग सकती हैं, परन्तु उनके पीछे घमण्ड, दोष लगाने की भावना और श्रेष्ठता का भाव छिपा हो सकता है। यीशु उन लोगों के हृदय को भी देखते थे जो बाहर से धार्मिक और भक्त दिखाई देते थे। मत्ती 22:18 में यीशु उन लोगों की बुरी मंशा को जानते थे जो उनकी परीक्षा लेने का प्रयास कर रहे थे। इसलिए हमें परमेश्वर के लिए उत्साह को आत्म-धार्मिकता के साथ नहीं मिलाना चाहिए। परमेश्वर के वचन का अधिक ज्ञान होना कभी भी दूसरों को नीचा देखने का कारण नहीं बनना चाहिए। बहुत वर्षों से विश्वास का जीवन जीना भी हमें किसी दूसरे व्यक्ति के विश्वास का लापरवाही से न्याय करने का अधिकार नहीं देता। हम जितना अधिक वचन को जानें, उतना ही कम हमें दूसरों का न्याय करने वाला और उतना ही अधिक स्वयं को पहले वचन के सामने खड़ा करने वाला व्यक्ति बनना चाहिए।

हमें अपने हृदय की “गणनाओं” को रिक्त करना चाहिए

बुरे विचारों में एक ऐसा विचार है जिससे हम बहुत परिचित हैं—अपने हृदय में लोगों का हिसाब लगाना। लूका 9:46 बताता है कि चेलों के बीच यह विवाद उत्पन्न हुआ कि उनमें सबसे बड़ा कौन होगा। यहाँ प्रयुक्त यूनानी शब्द *dialogismos* (διαλογισμός) विचार, तर्क-वितर्क और हृदय के भीतर किए जाने वाले आकलन और निर्णय से सम्बन्धित है। चेलों के मुँह से विवाद बाहर आने से पहले ही उनके हृदय में हिसाब-किताब आरम्भ हो चुका था। **“कौन अधिक महत्वपूर्ण है?” “किसे अधिक मान्यता मिलती है?” “वह व्यक्ति मुझसे आगे क्यों है?”** हम भी लोगों के साथ सम्बन्ध रखते समय अपने हृदय में ऐसे हिसाब लगाते हैं। **“मैंने इस व्यक्ति के लिए इतना किया है। उसने मेरे लिए क्या किया?” “पहले मुझे ही क्यों झुकना चाहिए?” “इस व्यक्ति के निकट रहने से मुझे क्या लाभ होगा?” “यदि मैं इस व्यक्ति की सहायता करूँ, तो बदले में मुझे क्या मिलेगा?”** जब ऐसे विचार हमारे हृदय पर अधिकार कर लेते हैं, तब हम लोगों को प्रेम किए जाने योग्य व्यक्तियों के रूप में नहीं, बल्कि लाभ और हानि का हिसाब लगाने योग्य वस्तुओं के रूप में देखने लगते हैं। यदि कोई मेरे साथ अच्छा व्यवहार करता है, तो मैं उसे पसंद करता हूँ। यदि कोई मेरे लिए उपयोगी है, तो मैं उसके निकट जाता हूँ। यदि कोई मुझे मान्यता देता है, तो मैं उससे प्रेम करता हूँ। लेकिन यदि कोई मेरी अपेक्षाएँ पूरी नहीं करता, तो मैं उसके लिए अपने हृदय का द्वार बन्द कर देता हूँ। परन्तु यीशु ने हमें लोगों का हिसाब लगाने के लिए नहीं कहा। उन्होंने हमें उनसे प्रेम करने के लिए कहा। इसलिए बुरे विचारों को रिक्त करना केवल कुछ बुरे विचारों को हटाना नहीं है। इसका अर्थ उस हृदय को भी रिक्त करना है जो लोगों को इस आधार पर आँकता और परखता है कि वे मेरे लिए कितने लाभदायक हैं।

प्रेम हृदय के खाते में बुराई का हिसाब नहीं रखता

1 कुरिन्थियों 13:5 प्रेम के विषय में कहता है कि प्रेम बुराई का हिसाब नहीं रखता। यहाँ प्रयुक्त यूनानी शब्द *logizetai* (λογίζεταί) में गणना करने, गिनने और हिसाब रखने का अर्थ पाया जाता है। इसलिए इस वचन में यह भाव भी है कि हम दूसरे व्यक्ति की गलतियों को अपने हृदय की खाता-बही में बार-बार लिखकर उनका हिसाब न लगाते रहें। मनुष्य अपने घावों को बहुत समय तक याद रखता है। **“उस व्यक्ति ने उस समय मेरे साथ ऐसा किया था।” “क्या तुम्हें पता है कि उसके कारण मैंने कितना दुःख सहा?” “इस बार मैं उसे अवश्य उसका बदला दूँगा।”** इस प्रकार हम अतीत की गलतियों को अपने हृदय की खाता-बही में दर्ज कर सकते हैं और जब भी कोई संघर्ष होता है, उन्हें फिर बाहर निकाल सकते हैं। लेकिन प्रेम ऐसा नहीं करता। इसका अर्थ यह नहीं है कि हमें अपने घावों को जबरदस्ती भूल जाना चाहिए। इसका अर्थ यह भी नहीं कि हम ऐसा दिखाएँ मानो कोई गलत काम हुआ ही नहीं। और इसका अर्थ उस समस्या को छिपाना भी नहीं है जिसे हल करना आवश्यक है। इसका अर्थ यह है कि हम अपने घाव को ऐसी खाता-बही न बनाएँ जिसके द्वारा हम लगातार दूसरे व्यक्ति को दोषी ठहराएँ और उस पर आक्रमण करें। नीतिवचन 17:9 कहता है कि जो अपराध को ढाँप देता है, वह प्रेम की खोज करता है। प्रेम स्मृति को मिटाता नहीं है। प्रेम स्मृति को बदला लेने का हथियार बनाने से इनकार करता है।

अपने हृदय में लोगों की श्रेणियाँ मत बनाइए

हृदय में लोगों का हिसाब लगाना भेदभाव की ओर ले जा सकता है। याकूब 2:1-4 उस व्यवहार को डाँटता है जिसमें कलीसिया में धनी व्यक्ति को अच्छी जगह दी जाती है, जबकि गरीब व्यक्ति को नीचे स्थान दिया जाता है। ऐसा क्यों होता है? क्योंकि हम लोगों को परमेश्वर के स्वरूप में बनाए गए व्यक्तियों के रूप में देखने के बजाय इस आधार पर आँकने लगते हैं कि वे हमारे लिए कितने उपयोगी हैं। हमारे हृदय में भी एक अदृश्य श्रेणी व्यवस्था बन सकती है: **“इस व्यक्ति के पास बहुत पैसा है।” “इस व्यक्ति का बहुत प्रभाव है।” “इस व्यक्ति के निकट रहने से मुझे लाभ होगा।” “वह व्यक्ति मेरे लिए कुछ नहीं कर सकता।”** लेकिन परमेश्वर बाहरी रूप देखकर पक्षपात नहीं करते। इसलिए कलीसिया में भी हमें उस हृदय को रिक्त करना चाहिए जो लोगों के धन, व्यवसाय, शिक्षा, सामाजिक पद या प्रभाव के अनुसार उनके साथ अलग-अलग व्यवहार करता है। कार्यस्थल में भी यही बात लागू होती है। यदि हम केवल ऊँचे पद पर बैठे लोगों के प्रति दयालु हैं, लेकिन अपने से नीचे के लोगों के साथ लापरवाही या अनादर से व्यवहार करते हैं, तो हमें अपने हृदय की जाँच करनी चाहिए। परिवार में भी यही बात लागू होती है। हमें स्वयं से पूछना चाहिए कि क्या हम अच्छा प्रदर्शन करने वाले बच्चे को अधिक महत्व देते हैं और संघर्ष कर रहे बच्चे की तुलना दूसरों से करते रहते हैं। किसी व्यक्ति का मूल्य इस बात से निर्धारित नहीं होता कि वह मेरे लिए कितना

उपयोगी है। जब हम लोगों का हिसाब लगाने वाले हृदय को रिक्त करते हैं, तभी हम उन्हें परमेश्वर के स्वरूप में बनाए गए व्यक्तियों के रूप में देखना आरम्भ करते हैं।

उस हृदय से भी सावधान रहना चाहिए जो परमेश्वर के साथ भी हिसाब लगाने लगता है

लोगों का हिसाब लगाने की आदत अन्ततः परमेश्वर के साथ हमारे सम्बन्ध में भी प्रवेश कर सकती है। “मैंने इतनी प्रार्थना की है। परमेश्वर ने अब तक मुझे यह क्यों नहीं दिया?” “मैंने इतनी सेवा की है। फिर भी मेरे जीवन में इतनी कठिनाइयाँ क्यों हैं?” “मैंने परमेश्वर को इतना दिया है। क्या परमेश्वर को बदले में मुझे इतनी आशीष नहीं देनी चाहिए?” जब ऐसे विचार हमारे हृदय पर अधिकार कर लेते हैं, तब विश्वास भी लेन-देन बन जाता है। प्रेरितों के काम 8 में शमौन ने धन के द्वारा परमेश्वर की सामर्थ्य प्राप्त करने का प्रयास किया। उसने परमेश्वर के अनुग्रह को उपहार के रूप में ग्रहण करने के बजाय ऐसी वस्तु समझा जिसे वह प्राप्त करके अपने उपयोग में ला सकता था। 1 तीमुथियुस 6 भी उस मनोभाव के विरुद्ध चेतावनी देता है जो भक्ति को लाभ कमाने का साधन मानता है। हमें भी स्वयं से पूछना चाहिए: “क्या मैं परमेश्वर से प्रेम करता हूँ, या परमेश्वर के द्वारा वह प्राप्त करना चाहता हूँ जो मैं चाहता हूँ?” “क्या मैं स्वयं परमेश्वर के अनुग्रह के लिए धन्यवाद देता हूँ, या केवल तभी धन्यवाद देता हूँ जब परमेश्वर मुझे मेरी इच्छा की वस्तु देते हैं?” जब हम अनुग्रह का हिसाब लगाने लगते हैं, तो कृतज्ञता गायब हो जाती है। जब हम प्रेम का हिसाब लगाते हैं, तो सेवा लेन-देन बन जाती है। जब हम विश्वास का हिसाब लगाते हैं, तो हम परमेश्वर को भी अपनी इच्छाएँ पूरी करने का साधन बना सकते हैं। इसलिए परमेश्वर के सामने हमें हिसाब लगाना नहीं, बल्कि भरोसा करना सीखना चाहिए।

जिन विचारों को हम हृदय में पालते हैं, वे कार्यों में बदल सकते हैं

बाइबल में अनेक उदाहरण हैं जिनमें विचार और इच्छाएँ अन्ततः वास्तविक कार्य बन गए। यहोशू 7 में आकान ने लूट की वस्तुएँ देखीं। उसने उनका लालच किया। और अन्ततः उसने उन्हें ले लिया और छिपा दिया। आरम्भ में वह केवल उसके हृदय की एक इच्छा थी। लेकिन क्योंकि उसने उस इच्छा से निपटा नहीं, वह अन्ततः एक कार्य बन गई। यहूदा इस्करियोती के साथ भी ऐसा ही हुआ। यूहन्ना 13:2 बताता है कि शैतान ने यीशु को पकड़वाने का विचार यहूदा के हृदय में डाल दिया था। बाद में यीशु को पकड़वाने की वह इच्छा वास्तविक कार्य बन गई। इसलिए हमें अपने विचारों को हल्के में नहीं लेना चाहिए। 2 कुरिन्थियों 10:5 हमें प्रत्येक विचार को बन्दी बनाकर

मसीह का आज्ञाकारी बनाने की शिक्षा देता है। इसका अर्थ यह नहीं है कि प्रत्येक विचार प्रकट होते ही पाप बन जाता है। महत्वपूर्ण बात यह है कि हम उस विचार को पकड़कर उसके पीछे चलेंगे या उसे मसीह के अधीन कर देंगे। विचार हमारे मन में आ सकते हैं, लेकिन हम उन्हें अपने हृदय में स्थान देंगे या नहीं—यह हमें परमेश्वर के वचन के सामने परखना चाहिए।

यदि बुरे विचारों को छोड़ दिया जाए, तो हमारी परखने की क्षमता धुँधली होने लगती है

यदि हम लगातार बुरे विचारों को अपने हृदय में पालते रहें, तो पाप के प्रति हमारी संवेदनशीलता धीरे-धीरे कम हो सकती है। जो बात आरम्भ में हमारे विवेक को परेशान करती थी, बाद में वही हमें पूरी तरह सामान्य लग सकती है। पहले हम जानते हैं कि किसी दूसरे का न्याय करना गलत है, लेकिन बार-बार ऐसा करने के बाद हम स्वयं को यह कहकर उचित ठहरा सकते हैं: **“मैं तो केवल सच कह रहा था।”** जिसे पहले हम लालच के रूप में पहचानते थे, बाद में हम उसे इस प्रकार प्रस्तुत कर सकते हैं: **“मैं तो केवल सफल होना चाहता हूँ।”** जो भावना ईर्ष्या के रूप में आरम्भ हुई थी, उसे भी हम यह कहकर समझा सकते हैं: **“समस्या तो उस व्यक्ति में है।”** पाप इसी प्रकार हमारे विचारों को धोखा देता है। इसीलिए नीतिवचन 4:23 कहता है कि सबसे बढ़कर अपने हृदय की रक्षा करो। विश्वासी को अपने विचारों को हल्के में नहीं लेना चाहिए। **“इन दिनों मैं लगातार किस बात के बारे में सोच रहा हूँ?” “किस व्यक्ति के विषय में विचार मेरे हृदय पर अधिकार किए हुए हैं?” “क्या ये विचार मुझे परमेश्वर के और निकट ले जा रहे हैं, या घृणा, घमण्ड और लालच की ओर खींच रहे हैं?”** हमें ये प्रश्न स्वयं से बार-बार पूछने चाहिए।

अपने हृदय के गुप्त कमरे को परमेश्वर के लिए खोल दीजिए

हमारे हृदय में एक ऐसा गुप्त कमरा है जिसमें कोई दूसरा प्रवेश नहीं कर सकता। शायद हमारा परिवार भी नहीं जानता कि वहाँ क्या है। शायद हमारा जीवनसाथी भी नहीं जानता। शायद हमारी कलीसिया के सदस्य भी नहीं जानते। वहाँ हम स्वतंत्र रूप से कल्पना करते हैं, न्याय करते हैं और इच्छाएँ रखते हैं। इसलिए वास्तविक आत्मिक युद्ध उस स्थान पर होता है जिसे मनुष्य की आँखें नहीं देख सकतीं। हम लोगों के सामने भक्त दिखाई दे सकते हैं, जबकि अपने हृदय में किसी व्यक्ति को दोषी ठहरा रहे हों। हम अपने होंठों से किसी को आशीष दे सकते हैं, जबकि भीतर से उसकी असफलता की इच्छा कर रहे हों। लेकिन परमेश्वर उस गुप्त कमरे को भी देखते हैं। इसलिए हमें उसका द्वार परमेश्वर के लिए खोलना चाहिए। मत छिपाइए। बहाने मत बनाइए। अपने विचारों को उचित ठहराने

का प्रयास मत कीजिए। दाऊद के समान प्रार्थना कीजिए: **“हे परमेश्वर, मुझे जाँचकर मेरे हृदय को जान; मुझे परखकर मेरे विचारों को जान। और देख कि मुझ में कोई बुरी चाल है या नहीं, और अनन्त के मार्ग में मेरी अगुवाई कर”** (भजन संहिता 139:23-24)। यह प्रार्थना स्वयं को दोषी ठहराने के लिए नहीं है। यह परमेश्वर से यह माँगने की प्रार्थना है कि वह अपने प्रकाश में हमारे हृदय को ईमानदारी से देखने में हमारी सहायता करे।

बुरे विचारों से रिक्त हुए स्थान को वचन से भरिए

केवल बुरे विचारों को रिक्त कर देना पर्याप्त नहीं है। उद्देश्य हमारे हृदय को खाली छोड़ देना नहीं है। रोमियों 12:2 हमें अपने मन के नए हो जाने से बदलते जाने की शिक्षा देता है। फिलिप्पियों 4:8 हमें सत्य, आदरणीय, न्यायपूर्ण, पवित्र, मनभावनी और प्रशंसा योग्य बातों पर मन लगाने के लिए कहता है। बाइबल केवल यह नहीं कहती: **“बुरे विचार मत सोचो।”** वह हमें यह भी सिखाती है कि हमें किन बातों के विषय में सोचना चाहिए। इसलिए जब घृणा उत्पन्न हो, तो क्षमा के विषय में सोचिए। जब ईर्ष्या उत्पन्न हो, तो उस अनुग्रह के लिए धन्यवाद दीजिए जो परमेश्वर ने उस व्यक्ति को दिया है। जब घमण्ड उत्पन्न हो, तो याद रखिए कि आपने जो कुछ पाया है, वह अनुग्रह है। जब किसी को दोषी ठहराने की इच्छा हो, तो याद रखिए कि आपको भी परमेश्वर की दया की आवश्यकता है। जब लालच उत्पन्न हो, तो उस अनुग्रह को गिनीए जो आपको पहले ही मिल चुका है। और सबसे बढ़कर यीशु मसीह के विषय में सोचिए। बुरे विचारों को रिक्त करने का सर्वोत्तम मार्ग यह नहीं कि हम कुछ भी न सोचने का प्रयास करें, बल्कि यह है कि हम परमेश्वर के वचन को अपने विचारों को नया करने दें। हमें मसीह के मन को अपने विचारों पर शासन करने देना चाहिए।

“बुरे विचारों” को रिक्त करने के सिद्धांत और व्यावहारिक दिशानिर्देश

तो फिर हम अपने दैनिक जीवन में बुरे विचारों को कैसे रिक्त कर सकते हैं? विचार दिखाई नहीं देते, इसलिए उन्हें अनदेखा छोड़ देना आसान है। लेकिन अपने विचारों को सँभालने का अभ्यास करना घर, कलीसिया और कार्यस्थल में हमारे शब्दों और कार्यों को बदलने का एक महत्वपूर्ण आरम्भिक बिन्दु है। हम निम्नलिखित पाँच बातों का अपने जीवन में अभ्यास कर सकते हैं।

1. जब कोई बुरा विचार उत्पन्न हो, तो “रुकिए-परखिए-प्रार्थना कीजिए-बदलिए” का अभ्यास कीजिए

जब कोई बुरा विचार उत्पन्न हो, तो अपने आप उसके पीछे मत चलिए। सबसे पहले, रुकिए। स्वयं से पूछिए: “इस समय मेरे हृदय में किस प्रकार का विचार प्रवेश कर रहा है?” उस विचार को पहचानिए। फिर उसे परखिए। “क्या यह विचार परमेश्वर के वचन के अनुरूप है?” “क्या यह विचार मुझे प्रेम, सत्य और पवित्रता की ओर ले जा रहा है, या घृणा, घमण्ड और लालच की ओर?” फिर प्रार्थना कीजिए: “प्रभु, मुझे इस विचार को अपने हृदय में रखकर पालने न दें। मेरे विचारों को मसीह के अधीन कर दीजिए।” अन्त में, उसे बदल दीजिए। केवल उस बुरे विचार को बलपूर्वक अपने मन से निकालने का प्रयास न करें। उसकी जगह ऐसा विचार रखिए जो परमेश्वर के वचन के अनुरूप हो। घृणा के स्थान पर क्षमा चुनिए। ईर्ष्या के स्थान पर आशीष। घमण्ड के स्थान पर नम्रता। लालच के स्थान पर कृतज्ञता और उदारता। दोष लगाने के स्थान पर दया। बुरे विचारों को रिक्त करने का अर्थ विचारों को बलपूर्वक मिटाना नहीं है। इसका अर्थ उन्हें परमेश्वर के वचन के सामने परखना और उनकी जगह ऐसे विचारों को रखना है जो मसीह की इच्छा के अनुरूप हों।

2. परिवार में पिछली गलतियों को अपने हृदय की खाता-बही में दर्ज मत करते रहिए

परिवार में हम एक-दूसरे की कमजोरियों को किसी और से अधिक जानते हैं। इसलिए जब संघर्ष उत्पन्न होता है, तो पिछली गलतियों को फिर सामने लाना बहुत आसान होता है। **“तुमने पहले भी यही किया था।” “कई वर्ष पहले भी तुम बिल्कुल ऐसे ही थे।” “मुझे आज भी वह बात याद है।”** जिन समस्याओं का समाधान आवश्यक है, उनके विषय में ईमानदारी से बात करनी चाहिए। हमें अपने घावों को जबरदस्ती भूलने की भी आवश्यकता नहीं है। लेकिन जिस बात को आप पहले ही क्षमा कर चुके हैं, उसे प्रत्येक झगड़े में फिर बाहर निकालकर दूसरे व्यक्ति पर आक्रमण करने का हथियार मत बनाइए। अपने जीवनसाथी की गलतियों को अपने हृदय की खाता-बही में लगातार दर्ज मत करते रहिए। अपने बच्चे को आज भी उसकी पिछली गलतियों के आधार पर परिभाषित मत कीजिए। और परिवार के एक सदस्य की कमजोरी की तुलना दूसरे सदस्य से मत कीजिए। प्रेम बुराई का हिसाब नहीं रखता। परिवार में अपने विचारों को रिक्त करने का अर्थ परिवार के सदस्यों की हर गलती को भूल जाना नहीं है। इसका अर्थ उस हृदय को रिक्त करना है जो उन्हें दोषी ठहराने के लिए उनकी गलतियों को पकड़े रहता है।

3. कलीसिया और समुदाय में अपने हृदय के भीतर लोगों की श्रेणियाँ मत बनाइए

किसी व्यक्ति का मूल्य उसके धन, व्यवसाय, शिक्षा या प्रभाव के आधार पर मत आँकिए। केवल उन लोगों के प्रति दयालु मत बनिए जो आपको लाभ पहुँचा सकते हैं। केवल इसलिए किसी व्यक्ति के पूरे चरित्र और विश्वास को बुरा मत ठहराइए क्योंकि उसकी राय आपसे अलग है। केवल सुनी हुई अफवाह के कारण किसी व्यक्ति के विषय में पहले से निर्णय मत कर लीजिए। दूसरों की कमजोरियों के विषय में होने वाली बातचीत में आसानी से शामिल मत हो जाइए। विशेष रूप से कलीसिया में हमें उस हृदय से सावधान रहना चाहिए जो विश्वास के आधार पर एक व्यक्ति को आत्मिक रूप से श्रेष्ठ और दूसरे को निम्न समझता है। हम सभी ऐसे लोग हैं जिन्हें परमेश्वर के अनुग्रह की आवश्यकता है। सुसमाचार लोगों को श्रेणियों में विभाजित नहीं करता। वह हमें एक-दूसरे को मसीह में भाई और बहन के रूप में देखना सिखाता है।

4. कार्यस्थल में लाभ और हानि से पहले ईमानदारी और प्रेम को रखिए

कार्यस्थल में गणना आवश्यक है। व्यवसाय में लागत और लाभ की गणना करनी पड़ती है और जिम्मेदारी के साथ निर्णय लेने पड़ते हैं। इसलिए हर प्रकार की गणना बुरी नहीं है। समस्या उस हृदय में है जो लाभ प्राप्त करने के लिए ईमानदारी, न्याय और प्रेम को त्यागने के लिए तैयार हो जाता है। अनुबंध में महत्वपूर्ण तथ्यों को मत छिपाइए।

दूसरे पक्ष की अनजान कमजोरी का लाभ उठाकर अनुचित लाभ मत कमाइए। प्रतियोगी को गिराने के लिए झूठी बातें मत फैलाइए। अपने सहकर्मी के काम का श्रेय स्वयं मत लीजिए। कोई महत्वपूर्ण निर्णय लेते समय केवल यह मत पूछिए: “इससे मुझे कितना लाभ होगा?” यह भी पूछिए: “क्या यह परमेश्वर के सामने ईमानदार है?” विश्वासी का कार्यस्थल भी वह स्थान है जहाँ हम परमेश्वर के सामने जीवन जीते हैं।

5. प्रत्येक दिन के अन्त में परमेश्वर के सामने अपने हृदय के विचारों की जाँच कीजिए

सोने से पहले, चाहे थोड़े समय के लिए ही सही, पूरे दिन के अपने हृदय को पीछे मुड़कर देखिए। “आज मैंने किसका न्याय किया?” “मैंने किसके प्रति अपने हृदय में चोट या नाराज़गी रखी?” “क्या मैंने किसी दूसरे की सफलता से ईर्ष्या की?” “क्या मैंने लोगों के साथ इस आधार पर व्यवहार किया कि वे मेरे लिए कितने उपयोगी हैं?” “क्या मैंने अपने लाभ के लिए ईमानदारी से समझौता करने का विचार किया?” “क्या मैं ऐसी जगहों पर, जहाँ कोई मुझे नहीं देखता, ऐसे विचारों को पकड़े रहा जो परमेश्वर को प्रसन्न नहीं करते?” फिर भजन संहिता 139 की प्रार्थना कीजिए: “हे परमेश्वर, मुझे जाँचकर मेरे हृदय को जान... और अनन्त के मार्ग में मेरी अगुवाई कर।” यदि आपको कोई गलत बात दिखाई दे, तो पश्चाताप कीजिए। यदि कोई ऐसा व्यक्ति है जिसे आपको क्षमा करना चाहिए, तो परमेश्वर के सामने उसका नाम लीजिए। यदि कुछ सुधारना आवश्यक है, तो अगले दिन उसे कार्य में उतारिए। प्रतिदिन परमेश्वर के सामने अपने विचारों की जाँच करने की आदत हमें अपने विचारों द्वारा बहाए जाने के बजाय उन्हें परमेश्वर के वचन के अधीन रखने में सहायता करती है। फिर भी हमें इन सभी बातों को केवल अपनी इच्छा-शक्ति और प्रयास से पूरा करने का प्रयत्न नहीं करना चाहिए। हम ऐसे लोग नहीं हैं जो अपने विचारों को पूरी तरह नियंत्रित कर सकें। हमें पवित्र आत्मा की सहायता की आवश्यकता है। पवित्र आत्मा को परमेश्वर के वचन के द्वारा हमारे हृदय को प्रकाशित करना चाहिए, हमें यह पहचानने में सहायता करनी चाहिए कि कौन-से विचार परमेश्वर को प्रसन्न करते हैं, और हमारे मन को नया करना चाहिए। इसलिए हम इस प्रकार प्रार्थना कर सकते हैं: “प्रभु, मेरे हृदय और मेरे विचारों को जाँचिए। मेरे हृदय में छिपे उन बुरे विचारों को मुझे दिखाइए जिन्हें दूसरे लोग नहीं देख सकते, लेकिन जिन्हें आप जानते हैं। जिन विचारों के द्वारा मैं दूसरों का न्याय और हिसाब करता हूँ, उनसे घृणा और ईर्ष्या करता हूँ, और केवल अपना लाभ खोजता हूँ, उन्हें मुझे छिपाने या उचित ठहराने न दें। जब बुरे विचार उत्पन्न हों, तो मुझे उन्हें पकड़कर पालने न दें, बल्कि आपके वचन के सामने उन्हें परखने और प्रत्येक विचार को मसीह के अधीन करने में मेरी सहायता करें। मेरे अपने विचारों से पहले परमेश्वर के वचन को रखने और अपनी इच्छाओं से ऊपर परमेश्वर की इच्छा खोजने में मेरी सहायता करें। मेरे उस हृदय

को, जो बुरे विचारों से रिक्त हुआ है, अपने वचन और अपने आत्मा से भर दीजिए, और मेरे भीतर मसीह का मन उत्पन्न कीजिए।”

बुरे विचारों को रिक्त करने का अर्थ ऐसा व्यक्ति बनना नहीं है जो कुछ भी नहीं सोचता। और इसका अर्थ अपनी सोचने की क्षमता को समाप्त करना भी नहीं है। बुरे विचारों को रिक्त करने का अर्थ है अपने विचारों को अपने जीवन का स्वामी न बनने देना और प्रत्येक विचार को मसीह के अधीन करना। इसका अर्थ है अपने विचारों से पहले परमेश्वर के वचन को रखना, अपनी इच्छाओं से ऊपर परमेश्वर की इच्छा को खोजना, और अपने निर्णय के बजाय मसीह के मन का अनुसरण करना। रिक्त करने का उद्देश्य हमें खाली व्यक्ति बनाना नहीं है। उद्देश्य यह है कि बुरे विचारों से रिक्त हुए स्थान को परमेश्वर के वचन से भरें, पवित्र आत्मा के शासन में जीवन जिई और मसीह का मन रखें। इसलिए आज भी हमें अपने हृदय की जाँच करनी चाहिए। हमें देखना चाहिए कि कौन-से विचार भीतर प्रवेश कर रहे हैं, हम किन विचारों को पकड़े हुए हैं और कौन-से विचार हमारे हृदय में बढ़ रहे हैं। और जब हमें ऐसे विचार दिखाई दें जो परमेश्वर को प्रसन्न नहीं करते, तो उन्हें छिपाना नहीं चाहिए। उन्हें परमेश्वर के सामने रिक्त कर देना चाहिए। उस खाली स्थान को वचन से भरिए। उसे मसीह के प्रेम से भरिए। उसे पवित्र आत्मा के शासन में सौंप दीजिए। जब हमारे विचार बदलते हैं, तो हमारे शब्द बदलते हैं। जब हमारे शब्द बदलते हैं, तो हमारे कार्य बदलते हैं। और जब हमारे कार्य बदलते हैं, तो हमारा जीवन भी धीरे-धीरे बदलने लगता है। बुरे विचार आग्रह करते हैं: **“मेरे विचार सही हैं।”** लेकिन विश्वास स्वीकार करता है: **“मेरे विचारों को भी परमेश्वर के वचन के सामने परखा जाना चाहिए।”** बुरे विचारों को रिक्त करना और प्रत्येक विचार को मसीह के अधीन करना— **यही “बुरे विचारों को रिक्त करने” का वह मार्ग है जिस पर हमें हर दिन चलना है।**

अध्याय 10:

“यौन अनैतिकता” को रिक्त करना

“जो व्यभिचार करता है, वह समझ से रहित है; जो ऐसा करता है, वह अपने ही प्राण का नाश करता है। उसे घाव और अपमान मिलेगा, और उसकी बदनामी मिटाई नहीं जा सकेगी” (नीतिवचन 6:32-33)। पिछले अध्याय में हमने अपने हृदय में बसे हुए बुरे विचारों की जाँच की थी। यीशु ने केवल बाहर दिखाई देने वाले कार्यों को ही नहीं देखा, बल्कि उस हृदय को भी देखा जहाँ से वे कार्य आरम्भ होते हैं। लेकिन हमारे हृदय में बसने वाले बुरे विचारों में एक ऐसा क्षेत्र है जिसके प्रति हमें विशेष रूप से सावधान रहना चाहिए। वह है यौन अनैतिकता से भरा हृदय और वासना। यौन पाप किसी दिन अचानक एक कार्य के रूप में प्रकट नहीं हो जाता। जब हम अपनी आँखों से देखी हुई बातों को लगातार अपने हृदय में रखते हैं, ऐसे व्यक्ति की ओर अपने हृदय को आकर्षित होने देते हैं जिसकी ओर हमें उस प्रकार आकर्षित नहीं होना चाहिए, और गलत इच्छाओं को बार-बार अपने भीतर बढ़ाते रहते हैं, तो वे इच्छाएँ अन्ततः कार्य में बदल सकती हैं। दाऊद के साथ ऐसा ही हुआ। 2 शमूएल 11 में हम देखते हैं कि दाऊद राजमहल की छत पर टहल रहा था, जब उसने एक स्त्री को स्नान करते हुए देखा। वह स्त्री बहुत सुन्दर थी। लेकिन दाऊद वहीं नहीं रुका। उसने पता लगवाया कि वह स्त्री कौन है। और यह जानने के बाद भी कि वह ऊरिय्याह की पत्नी बतशेबा है, उसने उसे बुलवाया और उसके साथ व्यभिचार किया। दाऊद का पाप एक ही क्षण में पूरा नहीं हुआ था। उसने देखा। उसकी रुचि जागी। उसने उसके बारे में पता लगाया। और अन्ततः उसने अपनी इच्छा को कार्य में बदल दिया। इसलिए यौन अनैतिकता को रिक्त करने का अर्थ केवल व्यभिचार के अन्तिम कार्य से बचना नहीं है। यौन अनैतिकता को रिक्त करने का अर्थ है उस हृदय को रिक्त करना जो दूसरे व्यक्ति को अपनी इच्छाओं की पूर्ति के साधन के रूप में देखता है, और परमेश्वर द्वारा स्थापित प्रेम की व्यवस्था के भीतर अपनी आँखों, हृदय और शरीर की रक्षा करना।

यीशु ने केवल कार्य नहीं, बल्कि हृदय को देखा

यीशु ने पहाड़ी उपदेश में कहा: “तुम सुन चुके हो कि कहा गया था, ‘व्यभिचार न करना।’ परन्तु मैं तुमसे कहता हूँ कि जो कोई किसी स्त्री को वासना की दृष्टि से देखता है, वह अपने मन में उसके साथ पहले ही व्यभिचार कर

चुका है" (मत्ती 5:27-28)। यीशु ने व्यभिचार की समस्या को केवल बाहरी कार्य के स्तर पर नहीं छोड़ा, बल्कि उसे हृदय के स्तर तक ले गए। इसलिए केवल यह कह देना कि हमने वास्तव में व्यभिचार नहीं किया, इस बात का प्रमाण नहीं है कि हमारा हृदय भी शुद्ध है। यहाँ यह समझना महत्वपूर्ण है कि किसी व्यक्ति की सुन्दरता को पहचानना और उस व्यक्ति को वासना की वस्तु के रूप में देखना दो अलग बातें हैं। केवल किसी दूसरे व्यक्ति को देख लेना अपने आप में पाप नहीं है। और यौन इच्छा को भी, इस सच्चाई से अलग करके कि परमेश्वर ने मनुष्य को पुरुष और स्त्री बनाया है, अपने आप में पूर्णतः बुरा नहीं समझना चाहिए। समस्या तब उत्पन्न होती है जब हम परमेश्वर द्वारा दी गई लैंगिकता को परमेश्वर की इच्छा और व्यवस्था से अलग कर देते हैं और उसे अपनी इच्छाओं की पूर्ति का साधन बना लेते हैं। जब हम किसी दूसरे व्यक्ति को एक सम्पूर्ण मनुष्य के रूप में देखने के बजाय अपनी इच्छा की वस्तु के रूप में देखने लगते हैं, जानबूझकर उस व्यक्ति के प्रति वासना को हृदय में रखते हैं, मन में बार-बार उसका आनंद लेते हैं, और परमेश्वर द्वारा निर्धारित सीमाओं को पार करने की इच्छा रखते हैं, तब पाप बढ़ना शुरू होता है। इसलिए यीशु के शब्द केवल यह नहीं कहते कि हमें अपने बाहरी कार्यों के विषय में सावधान रहना चाहिए। वे हमें अपनी दृष्टि और अपने हृदय को भी परमेश्वर के सामने जाँचने के लिए कहते हैं।

यौन अनैतिकता स्वयं को और दूसरों को भी नष्ट करती है

नीतिवचन 6 चेतावनी देता है कि व्यभिचार करने वाला व्यक्ति अन्ततः स्वयं को नष्ट करता है। यौन पाप केवल एक व्यक्ति की निजी समस्या नहीं है। यह जीवनसाथी को गहरी चोट पहुँचा सकता है। यह बच्चों के जीवन में भी घाव छोड़ सकता है। यह परिवार को हिला सकता है। यह कलीसिया और समुदाय के विश्वास को भी नष्ट कर सकता है। और जब हम पाप को छिपाना शुरू करते हैं, तो दूसरे पाप भी आसानी से उसके पीछे आने लगते हैं। हम झूठ बोलने लगते हैं। हम अपना फोन और संदेश छिपाने लगते हैं। हम अपनी गतिविधियों को छिपाने लगते हैं। हम लोगों के सामने ऐसा व्यवहार कर सकते हैं जैसे कुछ हुआ ही नहीं, जबकि गुप्त रूप से एक अलग जीवन जी रहे होते हैं। इस प्रकार यौन अनैतिकता अपने साथ झूठ और पाखण्ड को भी ले आती है। इसीलिए हमें शुरुआत को हल्के में नहीं लेना चाहिए। "सिर्फ एक बार देखने में क्या समस्या है?" "मैं केवल मन में सोच रहा हूँ, इससे क्या फर्क पड़ता है?" "हम तो केवल अच्छे मित्र हैं।" "अभी तो कुछ हुआ ही नहीं है।" यदि हम इस प्रकार स्वयं को आश्वस्त करते रहें, तो एक दिन हम ऐसे स्थान तक पहुँच सकते हैं जहाँ जाने की हमने कभी कल्पना भी नहीं की थी। पाप पर विजय पाने के सबसे बुद्धिमान मार्गों में से एक यह नहीं है कि हम अन्तिम क्षण तक पहुँचकर वहाँ टिके रहने और विरोध करने का प्रयास करें, बल्कि यह है कि आरम्भ में ही पाप के मार्ग से मुड़ जाएँ।

हमें अपनी आँखों और अपने हृदय की रक्षा करनी चाहिए

1 यूहन्ना 2:16 "शरीर की अभिलाषा, आँखों की अभिलाषा और जीवन के घमण्ड" के विषय में चेतावनी देता है। हमारी आँखें हमारे हृदय को प्रभावित करती हैं। इसलिए हम क्या देखते हैं, यह महत्वपूर्ण है। लेकिन यौन अनैतिकता हमेशा केवल आँखों से शुरू नहीं होती। यह अकेलेपन से शुरू हो सकती है। यह दूसरों से मान्यता पाने की इच्छा से शुरू हो सकती है। यह अपने जीवनसाथी के प्रति असन्तोष या वैवाहिक संघर्ष के बीच किसी दूसरे व्यक्ति पर भावनात्मक रूप से निर्भर होने से शुरू हो सकती है। इंटरनेट, वीडियो और सोशल मीडिया को बार-बार देखते हुए भी हम वासना को बढ़ा सकते हैं। कार्यस्थल या कलीसिया में मिलने वाले किसी व्यक्ति के साथ आवश्यकता से अधिक भावनात्मक निकटता बढ़ाते हुए भी हमारा हृदय उसकी ओर आकर्षित होने लग सकता है। इसलिए हमें केवल यह नहीं पूछना चाहिए: "मैं क्या देख रहा हूँ?" हमें यह भी पूछना चाहिए: "इस समय मेरा हृदय किसकी ओर जा रहा है?" "जिस निकटता को मुझे अपने जीवनसाथी के साथ खोजना चाहिए, उसे मैं किस दूसरे व्यक्ति से खोज रहा हूँ?" "किस व्यक्ति का ध्यान और मान्यता मेरे हृदय को आवश्यकता से अधिक आकर्षित कर रही है?" "जब मैं अकेला होता हूँ, तब मैं बार-बार क्या देखता और क्या सोचता हूँ?" इन प्रश्नों के सामने हमें ईमानदारी से स्वयं की जाँच करनी चाहिए।

परीक्षा के सामने अपने आप पर आवश्यकता से अधिक भरोसा न करें

नीतिवचन 7 हमें ऐसे व्यक्ति की तस्वीर दिखाता है जो यौन प्रलोभन में गिरता है। वह खतरनाक स्थान के निकट जाता है। वह स्वयं उस परिस्थिति में प्रवेश करता है जिससे उसे बचना चाहिए था। और अन्ततः वह प्रलोभन की बात सुनता है और उसके पीछे चल पड़ता है। यहाँ हम एक महत्वपूर्ण सिद्धान्त सीखते हैं। प्रलोभन पर विजय पाने का अर्थ यह नहीं है कि हम प्रलोभन के बीच में प्रवेश करके यह सिद्ध करें कि हमारी इच्छाशक्ति कितनी मजबूत है। जिससे बचना चाहिए, उससे बचना ही बुद्धिमानी है। जिसे नहीं देखना चाहिए, उसे मत देखिए। यदि कुछ हटाने की आवश्यकता है, तो उसे हटा दीजिए। जहाँ आपको ऑनलाइन नहीं जाना चाहिए, वहाँ मत जाइए। अनावश्यक निजी संपर्क को जारी मत रखिए। यदि कोई संबंध आपके हृदय को गलत दिशा में हिला रहा है, तो उचित सीमाएँ स्थापित कीजिए। यदि आप अकेले रहने के किसी विशेष समय या स्थान में बार-बार पाप में गिरते हैं, तो उस वातावरण को बदल दीजिए। "मैं ठीक हूँ।" "मैं एक पास्टर हूँ, इसलिए मुझे कोई समस्या नहीं होगी।" "मैं इतने वर्षों से विश्वास में हूँ, इतनी-सी परीक्षा पर तो विजय पा सकता हूँ।" "हम तो केवल अच्छे मित्र हैं।" इस प्रकार का आत्मविश्वास उलटे खतरनाक हो सकता है। अपनी कमजोरी को स्वीकार करना बुद्धिमानी है। पाप से लड़ने वाला व्यक्ति वह नहीं है जो पाप के निकट रहकर अपनी शक्ति पर घमण्ड करता है, बल्कि वह है जो पाप के स्थान से दूर रहता है और परमेश्वर के निकट जाता है।

लोगों को इच्छा की वस्तु नहीं, बल्कि सम्मानयोग्य मनुष्य के रूप में देखिए

यौन अनैतिकता की सबसे गहरी समस्याओं में से एक यह है कि हम दूसरे व्यक्ति को किस दृष्टि से देखते हैं। परमेश्वर ने मनुष्य को अपने स्वरूप में बनाया है। इसलिए किसी दूसरे व्यक्ति का शरीर ऐसी वस्तु नहीं है जिसे मैं अपनी इच्छा के अनुसार देखूँ, जिसकी कल्पना करूँ और जिसका उपयोग करूँ। कार्यस्थल में मिलने वाले विपरीत लिंग के लोगों का सम्मान कीजिए। कलीसिया में मिलने वाले विपरीत लिंग के लोगों का सम्मान कीजिए। और यह भी याद रखिए कि ऑनलाइन दिखाई देने वाला व्यक्ति भी परमेश्वर के स्वरूप में बनाया गया मनुष्य है। जब हम किसी व्यक्ति को अपनी इच्छा की वस्तु के रूप में देखना शुरू करते हैं, तब उस व्यक्ति का व्यक्तित्व और उसकी गरिमा पीछे चली जाती है और हमारी अपनी इच्छा सामने आ जाती है। यह प्रेम नहीं है। प्रेम दूसरे व्यक्ति की भलाई खोजता है, लेकिन वासना दूसरे व्यक्ति के द्वारा अपनी इच्छा पूरी करना चाहती है। प्रेम दूसरे व्यक्ति का सम्मान करता है, लेकिन वासना दूसरे व्यक्ति का उपयोग करना चाहती है। प्रेम सीमाओं का सम्मान करता है, लेकिन वासना सीमाओं को पार करना चाहती है। इसलिए यौन अनैतिकता को रिक्त करना केवल यौन इच्छा को दबाना नहीं है। यह लोगों को फिर से मनुष्य के रूप में देखने वाली दृष्टि को पुनः प्राप्त करना है।

परमेश्वर द्वारा दिया गया विवाह एक सुन्दर उपहार है

बाइबल यह नहीं सिखाती कि लैंगिकता अपने आप में अशुद्ध है। परमेश्वर ने पुरुष और स्त्री को बनाया और विवाह की वाचा के भीतर पति-पत्नी को एक-दूसरे से प्रेम करने और एक देह होने के लिए बनाया। इसलिए विवाह के भीतर पति-पत्नी का प्रेम और यौन निकटता परमेश्वर द्वारा दिए गए सुन्दर उपहार हैं। समस्या तब उत्पन्न होती है जब हम परमेश्वर द्वारा दिए गए उपहार को परमेश्वर की इच्छा और व्यवस्था से अलग करके अपनी इच्छा पूरी करने के लिए उपयोग करते हैं। पति-पत्नी को एक-दूसरे के साथ अपनी इच्छाओं को पूरा करने के साधन के रूप में व्यवहार नहीं करना चाहिए। उन्हें एक-दूसरे से प्रेम करना, सम्मान करना और एक-दूसरे का ध्यान रखना चाहिए। यौन संबंध में भी एकतरफा माँगों से अधिक महत्वपूर्ण प्रेम, जिम्मेदारी और एक-दूसरे के प्रति संवेदनशीलता है। वैवाहिक निकटता अधिकार जताने में नहीं, बल्कि प्रेम में होनी चाहिए। परमेश्वर द्वारा दी गई लैंगिकता सुन्दर है। लेकिन परमेश्वर द्वारा निर्धारित सीमाओं से बाहर की वासना उस सुन्दर उपहार को विकृत कर देती है।

अपने जीवनसाथी की तुलना किसी दूसरे व्यक्ति से मत कीजिए

नीतिवचन 5:18 कहता है, “अपनी जवानी की पत्नी के साथ आनन्दित रह।” विवाहित व्यक्ति को परमेश्वर द्वारा दिए गए जीवनसाथी को बहुमूल्य समझना चाहिए और विवाह की वाचा के भीतर संतोष और विश्वासयोग्यता सीखनी चाहिए। लेकिन जब तुलना शुरू होती है, तो संतोष डगमगाने लगता है। “वह व्यक्ति मेरे जीवनसाथी से अधिक सुन्दर है।” “वह व्यक्ति मुझे मेरे जीवनसाथी से अधिक समझता है।” “वह व्यक्ति मेरी बात अधिक अच्छी तरह सुनता है।” “जब मैं उस व्यक्ति के साथ होता हूँ, तो मुझे लगता है कि मुझे अधिक मान्यता मिल रही है।” यदि हम लगातार ऐसे विचारों को अपने हृदय में रखते हैं, तो जीवनसाथी की कमियाँ हमें बड़ी से बड़ी दिखाई देने लगेंगी और दूसरे व्यक्ति की अच्छाइयाँ अधिक से अधिक बड़ी दिखाई देंगी। और एक समय ऐसा आ सकता है जब शरीर से पहले हमारा हृदय अपने जीवनसाथी को छोड़ दे। इसलिए विवाह में विश्वासयोग्यता का अर्थ केवल शारीरिक व्यभिचार न करना नहीं है। इसका अर्थ है अपने हृदय, शरीर और संबंध में अपने जीवनसाथी के प्रति विश्वासयोग्य रहना। अपने जीवनसाथी की अच्छाइयों को फिर से देखिए। कृतज्ञता व्यक्त कीजिए। एक-दूसरे की बात सुनिए। निकटता को बढ़ाइए। एक-दूसरे की आवश्यकताओं के विषय में ईमानदारी से बात कीजिए। यदि कोई चोट है, तो उससे मुँह न मोड़िए; उसके विषय में बातचीत कीजिए। विवाह ऐसा संबंध नहीं है जो अपने आप स्वस्थ हो जाता है। प्रेम की देखभाल करनी पड़ती है।

पति-पत्नी की कठिनाइयाँ व्यभिचार का कारण नहीं बन सकतीं

पति-पत्नी के बीच संघर्ष हो सकता है। भावनात्मक दूरी उत्पन्न हो सकती है। यौन जीवन में कठिनाइयाँ हो सकती हैं। दोनों की आवश्यकताएँ अलग हो सकती हैं। इन समस्याओं को हल्के में नहीं लेना चाहिए। पति-पत्नी को ईमानदारी से बातचीत करनी चाहिए और आवश्यकता पड़ने पर बुद्धिमान सहायता लेकर अपने संबंध की देखभाल करनी चाहिए। लेकिन एक बात स्पष्ट है। अपने जीवनसाथी के साथ संबंध कठिन होना व्यभिचार को उचित नहीं ठहराता। “मेरे जीवनसाथी ने मुझे नहीं समझा।” “मेरे जीवनसाथी ने मुझसे प्रेम नहीं किया।” “हमारा वैवाहिक संबंध बहुत समय से अच्छा नहीं था।” इन कठिनाइयों को गंभीरता से संभालना चाहिए, लेकिन इन्हें अपने व्यभिचार की जिम्मेदारी दूसरे व्यक्ति पर डालने का कारण नहीं बनाया जा सकता। पाप की जिम्मेदारी हमारे अपने चुनाव में है। इसलिए जब समस्या उत्पन्न हो, तो अपने हृदय को किसी दूसरे व्यक्ति की ओर मोड़ने के बजाय पहले अपने जीवनसाथी से ईमानदारी से बात कीजिए और परमेश्वर के सामने अपने हृदय की जाँच कीजिए। अपने जीवनसाथी के प्रति विश्वासयोग्य होने का अर्थ केवल किसी दूसरे व्यक्ति के साथ संबंध न रखना नहीं है। इसका अर्थ है परमेश्वर द्वारा दिए गए जीवनसाथी से प्रेम करना, उसका सम्मान करना, और अपने हृदय, शरीर और पूरे जीवन के द्वारा विवाह की उस वाचा के प्रति विश्वासयोग्य रहना।

यौन अनैतिकता के विषय में दूसरों से पहले स्वयं की जाँच कीजिए

यौन पाप ऐसा विषय भी है जिसमें हम आसानी से दूसरों को दोषी ठहराने लगते हैं। हम दूसरे व्यक्ति के पाप के प्रति अत्यन्त संवेदनशील हो सकते हैं, जबकि अपने हृदय की वासना के प्रति असंवेदनशील बने रहते हैं। यूहन्ना 8 में लोग व्यभिचार में पकड़ी गई एक स्त्री को यीशु के पास लाए। उन्होंने उस स्त्री के पाप को सामने रखा, लेकिन यीशु ने उनसे कहा: “तुम में जो निष्पाप हो, वही पहले उसे पत्थर मारे।” इन शब्दों का अर्थ यह नहीं है कि व्यभिचार पाप नहीं है। बल्कि इसका अर्थ यह है कि दूसरे व्यक्ति के पाप को दोषी ठहराने से पहले हमें याद रखना चाहिए कि हम स्वयं भी परमेश्वर के सामने खड़े हुए पापी हैं। इसलिए हमें सबसे पहले स्वयं से पूछना चाहिए: “क्या मेरी आँखें शुद्ध हैं?” “क्या मेरे हृदय में कोई ऐसी वासना है जिसे मैं बार-बार पाल रहा हूँ?” “क्या मैं किसी ऐसे व्यक्ति पर भावनात्मक रूप से आवश्यकता से अधिक निर्भर हो रहा हूँ जो मेरा जीवनसाथी नहीं है?” “जब कोई मुझे नहीं देख रहा होता, तब मैं क्या देखता हूँ?” “क्या मैं दूसरे व्यक्ति के पाप की आलोचना करते हुए अपने हृदय के पाप को छिपा रहा हूँ?” किसी दूसरे व्यक्ति पर पत्थर उठाने से पहले हमें अपना हृदय परमेश्वर के सामने रखना चाहिए।

जब अपने पाप का एहसास हो, तो उसे छिपाइए नहीं; परमेश्वर के पास लौट आइए

जब कोई व्यक्ति यौन पाप में गिर जाता है, तो यदि वह पाप को छिपाना शुरू कर दे, समस्या और भी गहरी हो जाती है। झूठ उसके पीछे आता है। पाखण्ड उसके पीछे आता है। जिम्मेदारी से बचने के बहाने उसके पीछे आते हैं। “दूसरा व्यक्ति पहले मेरे पास आया था।” “अपने जीवनसाथी के कारण मैं अकेला महसूस करता था।” “मेरे पास कोई और रास्ता नहीं था।” “केवल एक बार हुआ था।” जब हम इस प्रकार अपने पाप को उचित ठहराते हैं, तो हम पश्चाताप से और अधिक दूर होते जाते हैं। दाऊद ने भी आरम्भ में अपने पाप को छिपाने का प्रयास किया। लेकिन जब नातान नबी के द्वारा उसका पाप प्रकट किया गया, तो अन्ततः उसने स्वीकार किया: “मैंने यहोवा के विरुद्ध पाप किया है।” यौन अनैतिकता को रिक्त करने वाला व्यक्ति वह नहीं है जिसे कभी परीक्षा नहीं आती। वह ऐसा व्यक्ति है जो अपने पाप को पहचानने के बाद उसे छिपाता नहीं, बल्कि परमेश्वर के पास लौट आता है। हमें पाप को स्वीकार करना चाहिए। हमें बहाने बनाना बन्द करना चाहिए। जिस जिम्मेदारी को उठाने की आवश्यकता है, उसे उठाना चाहिए। यदि किसी संबंध को समाप्त करने की आवश्यकता है, तो उसे समाप्त करना चाहिए। यदि सहायता की आवश्यकता है, तो सहायता लेनी चाहिए। पश्चाताप केवल यह कह देने पर समाप्त नहीं होता कि “मैंने गलत किया।” उसके साथ वास्तविक परिवर्तन भी होना चाहिए—पाप की दिशा से मुड़ जाना।

उस परमेश्वर की कृपा को देखिए जो पाप से भी बड़ी है

लेकिन यौन पाप के विषय में बात करते समय केवल चेतावनी ही नहीं होनी चाहिए। क्योंकि सुसमाचार में पुनर्स्थापना भी है। होशे की पुस्तक में परमेश्वर ने होशे के परिवार के द्वारा अविश्वासी इस्राएल के प्रति अपने प्रेम को प्रकट किया। इस्राएल परमेश्वर को छोड़कर दूसरे देवताओं के पीछे चला गया। फिर भी परमेश्वर ने उन्हें केवल त्यागकर बात समाप्त नहीं की, बल्कि उन्हें फिर से लौट आने के लिए बुलाया। इसका अर्थ यह नहीं है कि व्यभिचार कोई हल्का पाप है। बल्कि यह पाप की गंभीरता के साथ-साथ यह भी दिखाता है कि परमेश्वर की कृपा पापी से भी बड़ी है। इसलिए यौन पाप में गिरा हुआ व्यक्ति भी यह सोचकर पाप में नहीं रहना चाहिए: “अब मेरे लिए सब कुछ समाप्त हो गया है।” उसे परमेश्वर के पास लौटना चाहिए। पश्चाताप करना चाहिए। आवश्यक जिम्मेदारी उठानी चाहिए। और फिर से विश्वासयोग्य जीवन जीना शुरू करना चाहिए। लेकिन क्षमा और संबंध की पुनर्स्थापना को एक ही बात नहीं समझना चाहिए। यदि व्यभिचार के द्वारा जीवनसाथी को गहरी चोट पहुँची है, तो केवल यह नहीं कहा जा सकता: “परमेश्वर ने मुझे क्षमा कर दिया है, इसलिए अब सब कुछ समाप्त हो गया।” घायल जीवनसाथी के दर्द का सम्मान करना चाहिए। सच्चे पश्चाताप और जिम्मेदारी की आवश्यकता है। विश्वास को फिर से स्थापित होने में समय लग सकता है। कुछ परिस्थितियों में पास्टर की सहायता और पेशेवर सहायता की भी आवश्यकता हो सकती है। और यदि बार-बार धोखा देने या किसी अन्य गंभीर हानि की स्थिति है, तो जीवनसाथी की सुरक्षा और गरिमा को भी गंभीरता से ध्यान में रखना चाहिए। परमेश्वर की कृपा पाप को हल्का नहीं बनाती। बल्कि वह हमें अपने पाप को ईमानदारी से स्वीकार करने और जिम्मेदारी के साथ उससे मुड़ने की शक्ति देती है।

हमें शारीरिक व्यभिचार से भी गहरे प्रेम के प्रश्न की जाँच करनी चाहिए

बाइबल परमेश्वर को छोड़कर मूर्तियों के पीछे जाने की तुलना भी कभी-कभी व्यभिचार से करती है। इससे पता चलता है कि परमेश्वर अपने लोगों के साथ अपने संबंध को वाचा के प्रेम के संबंध के रूप में देखते हैं। इसलिए यौन अनैतिकता की जाँच करते समय हमें एक और गहरा प्रश्न भी पूछना चाहिए: “मेरा हृदय सबसे अधिक किससे प्रेम करता है?” वह धन हो सकता है। वह सफलता हो सकती है। वह सम्मान हो सकता है। वह हमारे बच्चे हो सकते हैं। वह हमारा परिवार हो सकता है। यहाँ तक कि वह कलीसिया और सेवकाई की सफलता भी हो सकती है। ये सभी परमेश्वर द्वारा दिए गए अच्छे उपहार हो सकते हैं। लेकिन यदि हम परमेश्वर के दिए हुए उपहार को स्वयं परमेश्वर से अधिक प्रेम करने लगे, तो वह उपहार मूर्ति बन सकता है। हम अपने जीवनसाथी को भी परमेश्वर से ऊँचा स्थान नहीं दे सकते। अपने बच्चों को भी नहीं। अपने परिवार को भी नहीं। कलीसिया को भी नहीं। इसलिए यौन अनैतिकता

को रिक्त करने के सबसे गहरे स्थान पर अन्ततः यह प्रश्न खड़ा होता है कि हमारा प्रेम किसकी ओर निर्देशित है। हमें प्रेम की गलत दिशा को रिक्त करना और अपने प्रेम को फिर से परमेश्वर की ओर मोड़ना चाहिए।

“यौन अनैतिकता” को रिक्त करने के सिद्धान्त और व्यावहारिक दिशानिर्देश

तो फिर हम अपने परिवार, कलीसिया और कार्यस्थल में यौन अनैतिकता को व्यावहारिक रूप से कैसे रिक्त कर सकते हैं? यौन अनैतिकता को रिक्त करना केवल यह निश्चय कर लेने पर समाप्त नहीं होता: “मैं व्यभिचार नहीं करूँगा।” यह अपनी आँखों, हृदय, संबंधों और शरीर को परमेश्वर को समर्पित करने; उन स्थानों और परिस्थितियों को बुद्धिमानी से संभालने जहाँ परीक्षा बढ़ सकती है; और गलत इच्छाओं से रिक्त हुए स्थान को मसीह के प्रेम और विश्वासयोग्यता से भरते जाने की प्रक्रिया है।

1. अपनी आँखों और हृदय में प्रवेश करने वाली बातों की रक्षा कीजिए

देखिए कि आप क्या देख रहे हैं। जाँच कीजिए कि आप किन वीडियो और तस्वीरों को बार-बार देखते हैं, आपकी दृष्टि बार-बार किस व्यक्ति पर टिकती है, जब आप अकेले होते हैं तो क्या खोजते हैं, और अपने मन में किन कल्पनाओं को बार-बार दोहराते हैं। यदि कोई सामग्री या वातावरण स्पष्ट रूप से आपके लिए परीक्षा का कारण बनता है, तो दृढ़ता से उससे दूरी बना लीजिए। यदि आवश्यकता हो, तो उस तक अपनी पहुँच को ही कठिन बना दीजिए। पाप से बचने के लिए व्यावहारिक कदम उठाना कमजोर विश्वास का चिह्न नहीं है। यह अपनी कमजोरी को जानने की बुद्धिमानी है।

2. संबंधों की सीमाओं की रक्षा कीजिए

यौन अनैतिकता शारीरिक संबंध से पहले भावनात्मक संबंध में शुरू हो सकती है। जाँच कीजिए कि कहीं आप ऐसे व्यक्ति के साथ आवश्यकता से अधिक व्यक्तिगत भावनाएँ तो साझा नहीं कर रहे जो आपका जीवनसाथी नहीं है। यदि ऐसे संदेश या मुलाकातें होने लगी हैं जिन्हें आपको अपने जीवनसाथी से छिपाना पड़ता है, तो यह पहले ही चेतावनी का संकेत हो सकता है। केवल यह कहकर स्वयं को आश्वस्त मत कीजिए: “कुछ भी नहीं हुआ है।”

आपको देखना होगा कि आपका हृदय किस दिशा में जा रहा है। विशेष रूप से पास्टरीय सेवकाई, परामर्श, कार्यस्थल और सेवकाई के संबंधों में हमें दूसरे व्यक्ति का सम्मान करते हुए स्वस्थ सीमाएँ बनाए रखनी चाहिए। यदि किसी संबंध को बनाए रखने के लिए उसे छिपाना आवश्यक है, तो उस संबंध की परमेश्वर के सामने फिर से जाँच करनी चाहिए।

3. अपने जीवनसाथी को बहुमूल्य समझिए और विवाह की निकटता की देखभाल कीजिए

विवाहित व्यक्ति को अपने जीवनसाथी की तुलना दूसरों से करने के बजाय परमेश्वर द्वारा दिए गए जीवनसाथी को फिर से देखना चाहिए। कृतज्ञता व्यक्त कीजिए। बातचीत कीजिए। एक साथ समय बिताइए। अपने जीवनसाथी की आवश्यकताओं को सुनिए। एक-दूसरे के शरीर और भावनाओं का सम्मान कीजिए। यदि कोई समस्या है, तो उससे मुँह न मोड़िए, बल्कि ईमानदारी से बात कीजिए। यदि आवश्यकता हो, तो सहायता लीजिए। वैवाहिक विश्वासयोग्यता केवल व्यभिचार न करने की निष्क्रिय अवस्था नहीं है। यह अपने जीवनसाथी से लगातार प्रेम करने, उसका सम्मान करने और विवाह की वाचा की देखभाल करने वाला सक्रिय जीवन है।

4. पाप को छिपाइए या उचित मत ठहराइए

यदि आपको एहसास हो कि गलत इच्छा या अनुचित संबंध शुरू हो गया है, तो उसे शीघ्र परमेश्वर के सामने ले आइए। यह मत सोचिए: “मैंने अभी तक इसे कार्य में नहीं किया है, इसलिए सब ठीक है।” यह विश्वास मत रखिए: “मैं जब चाहूँ इसे रोक सकता हूँ।” और यदि आपने पहले ही पाप कर लिया है, तो उसकी जिम्मेदारी किसी दूसरे व्यक्ति पर मत डालिए। अपने चुनाव को स्वीकार कीजिए और परमेश्वर के सामने पश्चाताप कीजिए। जिसे समाप्त करना है, उसे समाप्त कीजिए। जिसे सुधारना है, उसे सुधारिए। जिस जिम्मेदारी को उठाना है, उसे उठाइए। सच्चा पश्चाताप पाप को छिपाने से मुड़कर ज्योति में आने का नाम है।

5. रिक्त किए गए स्थान को मसीह के प्रेम और विश्वासयोग्यता से भरिए

यौन अनैतिकता को रिक्त करने का उद्देश्य ऐसा व्यक्ति बनना नहीं है जिसके भीतर कोई इच्छा ही न हो। उद्देश्य प्रेम की दिशा को सही करना है। जो आँखें दूसरे व्यक्ति को इच्छा की वस्तु के रूप में देखती थीं, उन्हें सम्मान

की दृष्टि से देखने वाली आँखें बनना चाहिए। जो हृदय अपने जीवनसाथी की तुलना दूसरों से करता था, उसे कृतज्ञ हृदय बनना चाहिए। जो हृदय केवल अपनी संतुष्टि खोजता था, उसे ऐसा प्रेम बनना चाहिए जो दूसरे व्यक्ति की भलाई खोजता है। जो हृदय संसार से प्रेम करता था, उसे परमेश्वर से प्रेम करने वाला हृदय बनना चाहिए। और जब हम अकेले हों, तब भी हमें मसीह की उपस्थिति में जीना चाहिए। परमेश्वर के वचन के निकट रहिए। प्रार्थना कीजिए। अपने शरीर और हृदय को परमेश्वर को अर्पित कीजिए। पवित्र आत्मा की सहायता माँगिए। वासना से रिक्त हुए स्थान को खाली मत छोड़िए। उसे मसीह के प्रेम से भरिए। लेकिन ये सभी अभ्यास केवल हमारी इच्छाशक्ति से पूरे नहीं हो सकते। “मैं फिर कभी ऐसा नहीं सोचूँगा।” “मैं कभी नहीं गिरूँगा।” केवल ऐसे निश्चय पर्याप्त नहीं हैं। बल्कि अपनी शक्ति पर आवश्यकता से अधिक भरोसा करना खतरनाक हो सकता है। हमें परमेश्वर की कृपा और पवित्र आत्मा की सहायता की आवश्यकता है। पवित्र आत्मा हमारी आँखों और हृदय की रक्षा करे, हमें गलत इच्छाओं का एहसास कराए, और परीक्षा के सामने बच निकलने का मार्ग चुनने में हमारी सहायता करे। और जब हम गिर जाएँ, तब वह हमें छिपने के बजाय कूस के सामने लौटने में सहायता करे। इसलिए हम इस प्रकार प्रार्थना कर सकते हैं: “प्रभु, मेरी आँखों और मेरे हृदय को जाँचिए। जब कोई मुझे नहीं देखता, तब मैं क्या देखता हूँ और क्या सोचता हूँ, आप जानते हैं। मुझे दूसरे व्यक्ति को अपनी इच्छाओं की पूर्ति की वस्तु के रूप में देखने न दें, बल्कि उसे परमेश्वर के स्वरूप में बनाया गया सम्मानयोग्य मनुष्य देखने में मेरी सहायता करें। मुझे गलत इच्छाओं और गलत संबंधों को रिक्त करने में सहायता करें, और परीक्षा के स्थान से दूर रहने की बुद्धि और साहस दें। परमेश्वर ने मुझे जो जीवनसाथी दिया है, उससे प्रेम करने और उसका सम्मान करने तथा विवाह की वाचा के प्रति विश्वासयोग्य रहने में मेरी सहायता करें। जब मुझे अपने पाप का एहसास हो, तो मुझे छिपने या बहाने बनाने न दें, बल्कि तुरंत आपके पास लौट आने दें। मेरे हृदय में जो कुछ भी ऐसा है जिससे मैं आपसे अधिक प्रेम करता हूँ, उसे मुझे दिखाइए और उसे रिक्त करने में मेरी सहायता करें। वासना से रिक्त मेरे हृदय को मसीह के प्रेम और विश्वासयोग्यता से भर दीजिए।” यौन अनैतिकता को रिक्त करने का अर्थ प्रेम को त्यागना नहीं है। इसका अर्थ गलत इच्छाओं को रिक्त करना और परमेश्वर द्वारा दी गई सच्चे प्रेम की व्यवस्था को पुनः स्थापित करना है। वासना को रिक्त करने का अर्थ आनन्द को त्यागना भी नहीं है। इसका अर्थ क्षणिक इच्छा से भी बड़े और गहरे आनन्द को मसीह में खोजना है। अपने जीवनसाथी के प्रति विश्वासयोग्य होने का अर्थ केवल व्यभिचार न करना नहीं है। इसका अर्थ अपने हृदय, शरीर और पूरे जीवन के द्वारा विवाह की वाचा को बहुमूल्य समझना और विश्वासयोग्यता से उसकी रक्षा करना है। और उससे भी गहरे स्तर पर, इसका अर्थ अपने प्रेम को फिर से परमेश्वर की ओर मोड़ना है। इसलिए आज भी हमें स्वयं से पूछना चाहिए: “मैं क्या देख रहा हूँ?” “मेरा हृदय किसकी ओर जा रहा है?” “क्या मेरा हृदय ऐसे व्यक्ति की ओर खिंच रहा है जो मेरा जीवनसाथी नहीं है?” “जब कोई मुझे नहीं देखता, तब मैं कैसे जीता हूँ?” “क्या मेरे हृदय में कुछ ऐसा है जिससे मैं परमेश्वर से अधिक प्रेम करता हूँ?” “मैं यह मानकर जी रहा हूँ कि मेरा शरीर, मेरा हृदय और मेरे संबंध किसके हैं?” इन प्रश्नों के सामने अपनी आँखों और अपने हृदय को परमेश्वर को अर्पित कीजिए। जिसे रिक्त करना है, उसे रिक्त कीजिए। जिसे समाप्त करना है,

उसे समाप्त कीजिए। जिस स्थान पर लौटना है, वहाँ लौट आइए। और उस रिक्त स्थान को मसीह के प्रेम से भर दीजिए। यौन अनैतिकता कहती है: "अपनी इच्छा को पूरा करो।" लेकिन विश्वास स्वीकार करता है: "मेरा शरीर और मेरा हृदय प्रभु के हैं।" यौन अनैतिकता को रिक्त करने का अर्थ इच्छा को समाप्त करना नहीं है। इसका अर्थ गलत इच्छा को रिक्त करना और अपने प्रेम को फिर से परमेश्वर की ओर मोड़ना है। यही "यौन अनैतिकता को रिक्त करने" का वह मार्ग है जिस पर हमें प्रतिदिन चलना है।

अध्याय 11:

“कुड़कुड़ाहट” को रिक्त करना

पिछले अध्याय में हमने अपने भीतर की यौन अनैतिकता और गलत इच्छाओं को रिक्त करने और अपने प्रेम को फिर से परमेश्वर की ओर मोड़ने वाले जीवन पर विचार किया। अब अध्याय 11 में हम एक और समस्या पर विचार करेंगे जो बहुत आसानी से हमारे हृदय और हमारे होंठों पर जगह बना लेती है। वह है कुड़कुड़ाने वाला हृदय। जीवन में अनेक अवसरों पर हम शिकायत करते हैं: “मेरे साथ ही ऐसा क्यों हुआ?” “वह व्यक्ति मेरे साथ ऐसा व्यवहार क्यों करता है?” “हमारा परिवार इतना कठिन समय क्यों झेल रहा है?” “कलीसिया ऐसी क्यों है?” “परमेश्वर ने यह होने क्यों दिया?” भले ही हम इन बातों को अपने होंठों से न कहें, हम अपने हृदय में इन्हें अनगिनत बार दोहरा सकते हैं। लेकिन बाइबल में कुड़कुड़ाहट केवल शिकायत के कुछ शब्द कह देने की समस्या नहीं है। कुड़कुड़ाहट हमारी दृष्टि बदल सकती है, हमें परमेश्वर की कृपा भुला सकती है, और लोगों तथा परिस्थितियों को देखने का हमारा दृष्टिकोण भी बदल सकती है। इसलिए कुड़कुड़ाहट को रिक्त करने का अर्थ केवल शिकायत करना बंद करना नहीं है। इसका अर्थ है परमेश्वर के सामने उस अविश्वास, असंतोष और दूसरों पर जिम्मेदारी डालने की प्रवृत्ति को जाँचना और रिक्त करना जो कुड़कुड़ाहट की जड़ में है, और उस स्थान को विश्वास और कृतज्ञता से भरना।

कुड़कुड़ाहट की जड़ में परमेश्वर पर भरोसा न करने वाला हृदय होता है

इस्राएलियों के जंगल के जीवन को देखें तो कुड़कुड़ाहट बार-बार दिखाई देती है। पानी न होने पर उन्होंने कुड़कुड़ाया। भोजन कम होने पर उन्होंने कुड़कुड़ाया। कनान देश के सामने पहुँचकर भी उन्होंने कुड़कुड़ाया। व्यवस्थाविवरण 1 हमें दिखाता है कि उनकी कुड़कुड़ाहट के पीछे क्या था। इस्राएली अपने तंबुओं में कहते थे: “यहोवा हम से बैर रखता है, इस कारण हमें मिस्र देश से निकाल लाया है कि हमें एमोरियों के हाथ में देकर नष्ट कर डाले” (व्यवस्थाविवरण 1:27)। यह आश्चर्यजनक बात थी। परमेश्वर उन्हें मिस्र से इसलिए नहीं निकाल लाया था कि वह उनसे घृणा करता था। उसने उन्हें इसलिए बचाया था क्योंकि वह उनसे प्रेम करता था। लेकिन अविश्वास ने उनकी सोच बदल दी। उन्होंने परमेश्वर के प्रेम को घृणा समझ लिया। परमेश्वर के उद्धार को मृत्यु समझ लिया। परमेश्वर की अगुवाई को त्याग दिया जाना समझ लिया। इसलिए मूसा ने उनकी समस्या स्पष्ट रूप से बताई: “इस बात में तुम ने

अपने परमेश्वर यहोवा पर विश्वास नहीं किया” (व्यवस्थाविवरण 1:32)। अन्ततः उनकी कुड़कुड़ाहट की गहरी जड़ परमेश्वर पर भरोसा न करने वाला हृदय था। उन्होंने परमेश्वर की भलाई पर भरोसा नहीं किया। उन्होंने परमेश्वर की प्रतिज्ञाओं पर भरोसा नहीं किया। उन्होंने इस बात पर भरोसा नहीं किया कि परमेश्वर उनसे आगे चल रहा है। इसलिए वर्तमान कठिनाइयाँ परमेश्वर की प्रतिज्ञाओं से बड़ी दिखाई देने लगीं। हमारे साथ भी यही होता है। जब कुड़कुड़ाहट उठती है, तो केवल अपने होंठ बन्द करके यह कहना पर्याप्त नहीं: “मुझे शिकायत नहीं करनी चाहिए।” हमें पहले स्वयं से पूछना चाहिए: “क्या मैं अभी परमेश्वर पर भरोसा कर रहा हूँ?” “क्या मैं परमेश्वर की भलाई पर विश्वास करता हूँ?” “क्या मैं सोच रहा हूँ कि परमेश्वर ने मुझे छोड़ दिया है?” “क्या मैं विश्वास करता हूँ कि जिन परिस्थितियों को मैं नहीं समझता, उनमें भी परमेश्वर काम कर रहा है?” कुड़कुड़ाहट को रिक्त करना अन्ततः परमेश्वर पर फिर से भरोसा करना है।

अविश्वास आज्ञा न मानने की ओर और अवज्ञा असंतोष की ओर ले जा सकती है

व्यवस्थाविवरण 1:26 इस्राएलियों के विषय में कहता है: “परन्तु तुम ने वहाँ जाने से इनकार किया और अपने परमेश्वर यहोवा की आज्ञा के विरुद्ध बलवा किया।” परमेश्वर ने उन्हें कनान में जाने को कहा। लेकिन उन्होंने विश्वास नहीं किया। विश्वास नहीं किया, इसलिए आज्ञा नहीं मानी। और आज्ञा न मानते हुए भी वे अपनी परिस्थितियों के विषय में कुड़कुड़ाते रहे। यहाँ हम एक प्रवाह देख सकते हैं। अविश्वास अवज्ञा को जन्म देता है, अवज्ञा असंतोष की ओर ले जा सकती है, और असंतोष कुड़कुड़ाहट के रूप में प्रकट हो सकता है। निश्चित रूप से हम यह नहीं कह सकते कि हर कुड़कुड़ाहट हमेशा इसी क्रम में पैदा होती है। कभी-कभी हमारे साथ वास्तव में अन्याय हुआ हो या हमारे साथ अनुचित व्यवहार किया गया हो, इसलिए हमारा हृदय दुखी हो सकता है। फिर भी बाइबल में इस्राएल के उदाहरण से हम कम से कम स्वयं से पूछ सकते हैं: “क्या मेरी कुड़कुड़ाहट वास्तव में केवल परिस्थितियों के कारण है?” “क्या इसलिए कि मेरी इच्छा पूरी नहीं हुई?” “क्या इसलिए कि मैं परमेश्वर की इच्छा से अधिक अपनी इच्छा को पकड़े हुए हूँ?” “क्या इसलिए कि मैं भरोसा नहीं करता कि परमेश्वर मुझसे बेहतर जानता है?” केवल कुड़कुड़ाने वाले होंठों को बदलने का प्रयास न करें। उसकी जड़ को भी परमेश्वर के सामने जाँचें।

कुड़कुड़ाहट अतीत के “मिस्र” को सुन्दर दिखाती है

गिनती 20 में इस्राएलियों ने जंगल की कठिनाइयों के कारण मूसा के विरुद्ध कुड़कुड़ाया। पहले उन्होंने वर्तमान कठिनाइयों की शिकायत की। फिर धीरे-धीरे वे अतीत की ओर देखने लगे। अन्ततः उन्होंने कहा: “तुम हमें मिस्र से निकालकर इस बुरे स्थान में क्यों ले आए?” (गिनती 20:5)। मिस्र उनके लिए अच्छा स्थान नहीं था। वहाँ वे दास थे। वहाँ उन्होंने कठोर परिश्रम और अत्याचार सहा था। वहीं से परमेश्वर ने उनकी पुकार सुनकर उन्हें छुड़ाया था। लेकिन

जब जंगल कठिन हुआ, तो मिस्र अच्छा दिखाई देने लगा। कुड़कुड़ाहट हमारी स्मृति तक बदल सकती है। वर्तमान का दुःख बड़ा दिखाई देता है और अतीत का दुःख छोटा। आज हमारे जीवन में भी ऐसा हो सकता है। यदि वर्तमान विवाह कठिन है, तो हम सोच सकते हैं कि अकेले रहना बेहतर था। यदि वर्तमान नौकरी कठिन है, तो पिछली नौकरी बहुत अच्छी लग सकती है। यदि वर्तमान कलीसिया पसंद नहीं आती, तो पिछली कलीसिया ऐसी याद आ सकती है मानो उसमें कोई समस्या थी ही नहीं। यदि विश्वास का जीवन कठिन हो जाए, तो हम यह भी सोच सकते हैं कि यीशु पर विश्वास करने से पहले का जीवन अधिक स्वतंत्र और अच्छा था। लेकिन विश्वास अतीत के मिस्र में वापस नहीं जाता। विश्वास याद रखता है कि परमेश्वर ने हमें कहाँ से छोड़ाया। और वह उस मार्ग की ओर देखता है जिस पर परमेश्वर आगे हमारी अगुवाई करेगा। कुड़कुड़ाहट मिस्र की ओर देखती है, लेकिन विश्वास परमेश्वर की प्रतिज्ञा की ओर देखता है।

कुड़कुड़ाहट हमें परमेश्वर की कृपा भुला देती है

इसाएलियों ने लाल समुद्र पार किया। उन्होंने अपनी आँखों से देखा कि परमेश्वर ने मिस्री सेना को पराजित किया। उन्होंने परमेश्वर की स्तुति की। लेकिन कुछ ही समय बाद पानी न मिलने पर वे फिर कुड़कुड़ाने लगे। निर्गमन 15:24 कहता है: “तब लोग मूसा पर कुड़कुड़ाकर कहने लगे, हम क्या पीएँ?” निर्गमन 16 में उन्होंने भोजन के कारण कुड़कुड़ाया। अध्याय 17 में उन्होंने फिर पानी के कारण कुड़कुड़ाया। उन्होंने परमेश्वर की कृपा का अनुभव किया था, लेकिन हर नई कठिनाई आने पर पिछली कृपा भूल गए। हम भी ऐसे ही हैं। परमेश्वर ने हमारी अनगिनत प्रार्थनाओं का उत्तर दिया हो सकता है, फिर भी आज एक समस्या आते ही हम उसकी सारी कृपा भूल सकते हैं। हमें बहुत कुछ मिला हो, फिर भी एक चीज की कमी के कारण हम ऐसा सोच सकते हैं मानो हमें कुछ मिला ही नहीं। कुड़कुड़ाहट उस चीज को बड़ा करती है जो हमारे पास नहीं है और उस कृपा को छोटा करती है जो हम पहले ही पा चुके हैं। कृतज्ञता इसके विपरीत करती है। वह हमें पहले से मिली कृपा याद दिलाती है। इसलिए जब कुड़कुड़ाहट उठे, पूछें: “मैं अभी परमेश्वर की कौन-सी कृपा भूल रहा हूँ?” “परमेश्वर ने अब तक मेरी अगुवाई कैसे की?” “उसने मुझे पहले ही क्या दिया है?” कृतज्ञता वास्तविक समस्याओं का इनकार नहीं है। वह यह स्वीकार करना है कि समस्याओं के रहते हुए भी परमेश्वर अभी भी मेरा परमेश्वर है।

कुड़कुड़ाहट हमें जिम्मेदारी दूसरों पर डालने के लिए प्रेरित कर सकती है

उत्पत्ति 3 में पाप करने के बाद जब परमेश्वर ने आदम से पूछा, तो उसने कहा: “जिस स्त्री को तू ने मेरे संग रहने को दिया है, उसी ने उस वृक्ष का फल मुझे दिया और मैंने खाया” (उत्पत्ति 3:12)। आदम ने जिम्मेदारी स्त्री पर डाल दी। और अधिक गहराई से देखें तो “जिस स्त्री को तू ने दिया” कहकर वह परमेश्वर तक पर जिम्मेदारी डालता

दिखाई देता है। हव्वा ने भी कहा: “सर्प ने मुझे बहका दिया, तब मैंने खाया।” निश्चित रूप से उत्पत्ति 3 को केवल पति-पत्नी के बीच शिकायत की कहानी तक सीमित नहीं करना चाहिए। फिर भी हम स्पष्ट देखते हैं कि पापी मनुष्य अपनी जिम्मेदारी स्वीकार करने के बजाय किसी दूसरे को दोष देना चाहता है। हम भी आसानी से ऐसा करते हैं: “मेरे जीवनसाथी ने ऐसा किया, इसलिए मैंने भी ऐसा किया।” “मेरे माता-पिता के कारण मैं ऐसा बन गया।” “कलीसिया ने मुझे दुःख दिया।” “उस व्यक्ति ने पहले शुरू किया।” “परिस्थितियाँ ऐसी थीं, इसलिए मेरे पास कोई विकल्प नहीं था।” दूसरे व्यक्ति ने वास्तव में गलत किया हो सकता है। उसकी जिम्मेदारी स्पष्ट रूप से देखी जानी चाहिए। लेकिन दूसरे का गलत काम मेरे अपने पाप की जिम्मेदारी नहीं ले जाता। पश्चाताप करने वाला व्यक्ति पहले स्वयं को जाँचता है: “प्रभु, मैंने क्या गलत किया?” “मुझे किस बात से पश्चाताप करना चाहिए?” “मुझे क्या सुधारना चाहिए?” कुड़कुड़ाहट को रिक्त करने का अर्थ हर समस्या के लिए स्वयं को दोषी ठहराना नहीं है। इसका अर्थ है दूसरों को दोष देकर अपनी जिम्मेदारी से बचना नहीं।

कुड़कुड़ाहट हमें परमेश्वर की आवाज सुनने से रोक सकती है

भजन 106:25 इस्राएल के विषय में कहता है: “वे अपने तंबुओं में कुड़कुड़ाए और यहोवा की बात न मानी।” कुड़कुड़ाहट और प्रभु की आवाज न सुनना साथ-साथ दिखाई देते हैं। जब कुड़कुड़ाहट हमें पकड़ लेती है, तो हमारे अपने विचार बहुत बड़े हो जाते हैं: “मुझे इतना ही क्यों मिला?” “केवल मैं ही इतना क्यों दुःख उठाता हूँ?” “वह व्यक्ति ऐसा क्यों है?” “परमेश्वर कुछ क्यों नहीं कर रहा?” जब हृदय इन विचारों से भर जाता है, तो परमेश्वर के वचन को सुनने की जगह नहीं बचती। समस्या परमेश्वर की प्रतिज्ञा से बड़ी दिखाई देती है। कमी परमेश्वर की कृपा से बड़ी दिखाई देती है। जो मैं चाहता हूँ, वह परमेश्वर ने जो किया है उससे अधिक महत्वपूर्ण हो जाता है। इसलिए जब कुड़कुड़ाहट उठे, हमें परमेश्वर के सामने रुकना चाहिए: “प्रभु, मैं अभी किस कारण कुड़कुड़ा रहा हूँ?” “मैं किस बात पर विश्वास नहीं कर पा रहा हूँ?” “मैं किस बात से असंतुष्ट हूँ?” “प्रभु, आप अभी मुझसे क्या कह रहे हैं?” कुड़कुड़ाहट की आवाज दोहराते रहने के बजाय हमें फिर से वचन सुनना चाहिए।

कुड़कुड़ाहट को परमेश्वर के पास ले जाएँ तो वह प्रार्थना बन सकती है

यहाँ एक बहुत महत्वपूर्ण अंतर समझना आवश्यक है। कुड़कुड़ाहट को रिक्त करने का अर्थ यह नहीं कि हम अपना दर्द और अपने प्रश्न परमेश्वर से न कहें। भजनों में अनेक प्रार्थनाएँ हैं जिनमें लोग परमेश्वर के सामने अपने दुःख और पीड़ा को ईमानदारी से उँडेलते हैं। वे पूछते हैं, “क्यों?” वे रोते हैं। वे अपने साथ हुए अन्याय की बात करते हैं। वे अपना दुःख नहीं छिपाते। विश्वास का अर्थ यह दिखावा करना नहीं कि कुछ हुआ ही नहीं। दुःखी होते हुए मुस्कुराने का दिखावा करना भी नहीं। कठिनाई में होते हुए यह कहना भी नहीं: “मुझे कोई समस्या नहीं है।” अंतर इस बात में

है कि हम अपने हृदय को कहाँ ले जाते हैं। यदि हम लगातार लोगों के बीच अपनी शिकायत फैलाते हैं, तो वह चुगली और विभाजन बन सकती है। यदि उसे हृदय में बार-बार पालते हैं, तो वह घृणा और कुड़कुड़ाहट में कठोर हो सकती है। लेकिन यदि उसे परमेश्वर के पास ले जाते हैं, तो वह प्रार्थना बन सकती है: “प्रभु, मैं अभी बहुत कठिन समय में हूँ।” “मैं इस बात को नहीं समझता।” “उस व्यक्ति के कारण मेरा हृदय दुखी है।” “मुझे भी क्रोध आता है।” “मैं नहीं जानता कि ऐसा क्यों हुआ।” परमेश्वर से ईमानदारी से कहिए। लेकिन वहीं समाप्त मत कीजिए। वचन के सामने अपने हृदय को जाँचिए। परमेश्वर की इच्छा खोजिए। अपनी कुड़कुड़ाहट लेकर परमेश्वर के पास जाइए, लेकिन उसी कुड़कुड़ाहट को हृदय में ज्यों का त्यों लेकर वापस मत आइए।

हर समस्या उठाने को “कुड़कुड़ाहट” नहीं कहना चाहिए

कुड़कुड़ाहट पर विचार करते समय एक और महत्वपूर्ण सत्य याद रखना चाहिए। हर असंतोष या समस्या उठाना पापपूर्ण कुड़कुड़ाहट नहीं है। प्रेरितों के काम 6 में आरम्भिक कलीसिया में एक वास्तविक समस्या उत्पन्न हुई। यूनानी बोलने वाले यहूदियों की विधवाओं की प्रतिदिन की सहायता में उपेक्षा हो रही थी। इसलिए उन्होंने इब्रानी बोलने वाले यहूदियों के विरुद्ध शिकायत की। प्रेरितों ने यह नहीं कहा: “तुम विश्वास की कमी के कारण शिकायत कर रहे हो, इसलिए चुप रहो।” उन्होंने जाँचा कि क्या वास्तव में समस्या थी। और उन्होंने सेवकाई की व्यवस्था को सुधारा। उन्होंने पवित्र आत्मा और बुद्धि से भरे सात लोगों को सहायता के काम के लिए नियुक्त किया, और प्रेरित प्रार्थना और वचन की सेवकाई में अधिक लगे रहे। परिणामस्वरूप परमेश्वर का वचन फैलता गया और चेलों की संख्या बहुत बढ़ी। शिकायत की आवाज समुदाय को नष्ट करने वाली चिंगारी बन सकती थी, लेकिन जब अगुवों ने उसके भीतर की वास्तविक समस्या को देखकर सुधारा, तो वही बात कलीसिया को स्वस्थ बनाने का अवसर बन गई। इसलिए हमें दोनों दिशाओं में देखना चाहिए। शिकायत करने वाले व्यक्ति को परमेश्वर के सामने अपना हृदय जाँचना चाहिए, और शिकायत सुनने वाले को भी परमेश्वर के सामने अपनी कमी जाँचनी चाहिए। बोलने वाले को अपने हर असंतोष को धार्मिकता का रूप नहीं देना चाहिए। सुनने वाले को भी हर समस्या को “कुड़कुड़ाहट” कहकर रोक नहीं देना चाहिए। “क्या इन शब्दों में कोई वास्तविक समस्या है जिसे सुधारना चाहिए?” “क्या मैं केवल इसलिए इसे कुड़कुड़ाहट कह रहा हूँ क्योंकि मैं इसे सुनना नहीं चाहता?” “इस समस्या के द्वारा परमेश्वर हमें क्या दिखा रहा है?” हमें ये प्रश्न पूछने आने चाहिए।

परिवार में शिकायत के शब्दों से अधिक उसके पीछे के हृदय को सुनिए

परिवार वह स्थान भी है जहाँ शिकायत बहुत आसानी से जमा हो सकती है। पति सोचता है: “मेरी पत्नी मेरा सम्मान नहीं करती।” पत्नी सोचती है: “मेरा पति मुझसे प्रेम नहीं करता।” माता-पिता बच्चों से शिकायत कर सकते हैं और बच्चे माता-पिता से। समस्या यह है कि शिकायत बार-बार होने पर हम एक-दूसरे के शब्दों के बजाय केवल चोट

सुनने लगते हैं। जब जीवनसाथी असंतोष व्यक्त करता है, तो हम तुरंत उत्तर देना चाहते हैं: “तुम भी ऐसे ही हो।” “तुमने पहले किया था।” “मैंने कुछ गलत नहीं किया।” लेकिन कभी-कभी पहले सुनना आवश्यक है: “तुम्हारा हृदय इतना दुखी क्यों हो गया?” “मैं क्या नहीं देख पाया?” “मैंने क्या गलत किया?” “हमें परमेश्वर के सामने क्या सुधारना चाहिए?” इसका अर्थ यह नहीं कि जीवनसाथी की हर बात सही है। लेकिन उसके शब्दों में वास्तविक दर्द है या नहीं, इसे सुनना आवश्यक है। और यदि हमसे गलती हुई है, तो हमें क्षमा माँगनी चाहिए। पति को पत्नी से क्षमा माँग सकना चाहिए। माता-पिता को बच्चों से भी क्षमा माँग सकना चाहिए। लक्ष्य शिकायत के शब्दों पर विजय पाना नहीं, बल्कि संबंध को पुनर्स्थापित करना है। लेकिन हमें यह भी अपेक्षा नहीं करनी चाहिए कि हमारा जीवनसाथी या परिवार हमारी हर आवश्यकता पूरी करे। अन्तिम संतुष्टि परमेश्वर से आती है। परिवार से प्रेम कीजिए, लेकिन उनसे उस स्थान को भरने की माँग मत कीजिए जिसे केवल परमेश्वर भर सकता है।

अगुवे शिकायत की आवाज के विरुद्ध बचाव करने से पहले सुनें

कलीसिया में भी शिकायत की आवाज सुनाई दे सकती है। अगुवा ऐसी बात सुनकर दुखी हो सकता है: “मैंने इतनी मेहनत से सेवा की।” “कोई इसे पहचानता क्यों नहीं?” “वे लोग कृतज्ञ क्यों नहीं हैं?” ऐसे विचार आ सकते हैं। लेकिन यदि अगुवा हर समस्या को अपने ऊपर हमला समझे, तो वह आवश्यक बात सुनने से चूक सकता है। प्रेरितों के काम 6 में प्रेरितों ने शिकायत सुनकर पहले समस्या को जाँचा। इसका अर्थ यह नहीं कि हर आलोचना सही होती है। कभी-कभी बातें तथ्यों से भिन्न हो सकती हैं। अनुचित आलोचना भी हो सकती है। फिर भी अगुवे को पहले परमेश्वर के सामने पूछना चाहिए: “प्रभु, क्या इन शब्दों के द्वारा मुझे कुछ देखने की आवश्यकता है?” “क्या हमें कुछ सुधारना है?” “क्या कोई व्यक्ति है जिसे मैं अनदेखा कर रहा हूँ?” और यदि अनुचित शब्दों से चोट पहुँची है, तो उस चोट को अन्य विश्वासियों के बीच फैलाने के बजाय परमेश्वर के पास ले जाना चाहिए। सावधान रहें कि अगुवे की चोट पूरे समुदाय की चोट न बन जाए। हर शिकायत को बिना परखे स्वीकार करना बुद्धिमानी नहीं है, लेकिन हर शिकायत को बिना परखे रोक देना भी बुद्धिमानी नहीं है। वचन के सामने परखिए, जिसे सुधारना है उसे सुधारिए, और जिसे परमेश्वर को सौंपना है उसे सौंप दीजिए।

कुड़कुड़ाहट के स्थान पर कृतज्ञता की आदत विकसित कीजिए

फिलिप्पियों 2:14 कहता है: “सब काम बिना कुड़कुड़ाए और बिना विवाद के किया करो।” बार-बार की गई कुड़कुड़ाहट आदत बन जाती है। पहले एक बात की शिकायत होती है, लेकिन बाद में हम हर बात की शिकायत करने वाले व्यक्ति बन सकते हैं। अच्छी बात होने पर भी पहले कमी देखते हैं। व्यक्ति की अच्छाइयों से पहले उसकी कमियाँ देखते हैं। धन्यवाद देने की बात से पहले शिकायत की बात खोजते हैं। इसलिए कुड़कुड़ाहट को रिक्त करने के लिए

हमें जानबूझकर कृतज्ञता का अभ्यास करना चाहिए। सुबह आँख खुलने पर धन्यवाद दें: “आज फिर जीवन देने के लिए धन्यवाद।” परिवार में धन्यवाद दें: “साथ जीवन बिताने के लिए परिवार देने के लिए धन्यवाद।” कलीसिया में धन्यवाद दें: “हम सिद्ध नहीं हैं, फिर भी साथ आराधना करने के लिए समुदाय देने के लिए धन्यवाद।” कार्यस्थल पर धन्यवाद दें: “आज काम करने का अवसर और शक्ति देने के लिए धन्यवाद।” कठिनाई में भी स्वीकार करें: “प्रभु, मैं अभी नहीं समझता, लेकिन विश्वास करता हूँ कि इस परिस्थिति में भी आप मेरे साथ हैं।” कृतज्ञता वास्तविकता को सुंदर बनाकर प्रस्तुत करना नहीं है। वह दर्द का इनकार भी नहीं है। कृतज्ञता इसलिए नहीं कि सब कुछ हमारी इच्छा के अनुसार हुआ। वह विश्वास की वह स्वीकारोक्ति है जो इस सत्य को पकड़े रहती है कि हमारी इच्छा के अनुसार न होने पर भी परमेश्वर भला है।

कुड़कुड़ाहट के बजाय परमेश्वर की प्रभुता मानने वाला आराधक बनिए

अय्यूब ने एक ही दिन में बहुत बड़ा दुःख झेला। उसने अपनी संपत्ति खोई। अपने बच्चों को खोया। उसका दुःख वास्तविक था। अय्यूब 1:20 कहता है कि उसने अपना वस्त्र फाड़ा और सिर मुँड़ाया। उसने दर्द न होने का दिखावा नहीं किया। फिर भी उस पीड़ा के बीच वह परमेश्वर के सामने गिरा और आराधना की। यह बहुत महत्वपूर्ण है। विश्वास का अर्थ दुःख का न होना नहीं है। प्रश्नों का न होना भी नहीं है। हर परिस्थिति को समझ लेना भी नहीं है। विश्वास का अर्थ है उन परिस्थितियों में भी परमेश्वर को न छोड़ना जिन्हें हम समझ नहीं पाते। हम भी प्रार्थना कर सकते हैं: “प्रभु, मैं अभी नहीं समझता, लेकिन मैं आप पर भरोसा करता हूँ।” “मेरी इच्छा के अनुसार न होने पर भी परमेश्वर भला है।” “मैं सभी कारण नहीं जानता, फिर भी विश्वास करता हूँ कि प्रभु जानते हैं।” “मैं कुड़कुड़ाहट में नहीं रहूँगा; मैं परमेश्वर की आराधना करूँगा।” सच्चा आराधक वह नहीं जिसके साथ सब कुछ उसकी इच्छा के अनुसार हुआ। सच्चा आराधक वह है जो अपनी इच्छा के अनुसार न होने पर भी परमेश्वर की प्रभुता और भलाई को पकड़े रहता है।

“कुड़कुड़ाहट” को रिक्त करने के सिद्धान्त और व्यावहारिक दिशानिर्देश

तो हम अपने दैनिक जीवन में कुड़कुड़ाहट को कैसे रिक्त कर सकते हैं? कुड़कुड़ाहट को रिक्त करना एक बार के निर्णय से समाप्त नहीं होता। हर बार जब कुड़कुड़ाहट उठे, हमें अपने हृदय की जाँच करने, उसे परमेश्वर के पास ले जाने, अविश्वास और असंतोष को रिक्त करने, और उस स्थान को विश्वास तथा कृतज्ञता से भरने का अभ्यास चाहिए।

1. जब कुड़कुड़ाहट उठे, पहले अपने हृदय की जाँच कीजिए

जब शिकायत का कारण पैदा होता है, तो हम पहले दूसरे व्यक्ति की गलती खोजते हैं। लेकिन पहले पूछिए: “मैं अभी किस कारण कुड़कुड़ा रहा हूँ?” “क्या इसलिए कि मेरी इच्छा पूरी नहीं हुई?” “क्या भय के कारण?” “क्या तुलना के कारण?” “क्या चोट के कारण?” “क्या इसलिए कि मैं परमेश्वर पर भरोसा नहीं कर रहा?” दूसरे की गलती होने पर भी पहले परमेश्वर के सामने अपने हृदय को जाँचिए। यदि आपने गलत किया है, स्वीकार कीजिए। यदि पश्चाताप करना है, तो पश्चाताप कीजिए। कुड़कुड़ाहट का क्षण केवल दूसरों की गलती खोजने का नहीं, बल्कि परमेश्वर के सामने अपने हृदय को जाँचने का समय बन सकता है।

2. कुड़कुड़ाहट लोगों में फैलाने से पहले परमेश्वर के पास ले जाइए

हृदय दुखी होने पर किसी से बात करना स्वाभाविक है। कभी-कभी भरोसेमंद व्यक्ति से सहायता और सलाह लेना भी आवश्यक है। लेकिन अपनी शिकायत कई लोगों में बार-बार फैलाकर उन्हें अपनी ओर करने का प्रयास न करें। यह समस्या सुलझाने के बजाय समुदाय में अविश्वास और विभाजन फैला सकता है। पहले परमेश्वर के पास ले जाइए। ईमानदारी से कहिए। आप रो सकते हैं। अपनी पीड़ा बता सकते हैं। लेकिन वचन के सामने अपने हृदय को भी जाँचिए। और आवश्यकता होने पर चुगली नहीं, बल्कि समाधान के लिए बातचीत कीजिए। कुड़कुड़ाहट लोगों में मत फैलाइए; उसे परमेश्वर के पास ले जाकर प्रार्थना में बदल दीजिए।

3. अतीत के “मिस्र” को सुंदर मत बनाइए; अब तक मिली कृपा याद कीजिए

वर्तमान कठिन होने पर अतीत अच्छा दिखाई दे सकता है। लेकिन कुड़कुड़ाहट के कारण अतीत को विकृत मत कीजिए। याद कीजिए कि परमेश्वर ने आपको कहाँ से छुड़ाया। अब तक की उसकी अगुवाई की कृपा याद कीजिए। उत्तर दी गई प्रार्थनाएँ याद कीजिए। कठिन समय में उसने आपको कैसे संभाला, याद कीजिए। और प्रार्थना कीजिए: “प्रभु, अतीत के मिस्र में लौटने की इच्छा को मुझसे रिक्त कर दीजिए। मुझे उस परमेश्वर की ओर देखने दें जो अभी भी मेरे साथ है, और उस मार्ग पर भरोसा करने दें जिस पर आप आगे मेरी अगुवाई करेंगे।” कुड़कुड़ाहट अतीत को पकड़ती है, लेकिन विश्वास परमेश्वर की प्रतिज्ञा को पकड़ता है।

4. समस्या उठाते समय दोष नहीं, पुनर्स्थापना खोजिए

यदि वास्तव में कोई गलती है, तो कभी-कभी उसके विषय में बोलना आवश्यक है। यह परिवार, कलीसिया और कार्यस्थल सभी में सच है। कुड़कुड़ाहट को रिक्त करने का अर्थ अन्याय को बिना कुछ कहे सहना या चुप रहना नहीं है। लेकिन समस्या बताते समय अपने उद्देश्य की जाँच कीजिए: “क्या मैं इस व्यक्ति पर हमला करना चाहता हूँ या समस्या सुलझाना?” “क्या मैं लोगों को अपनी ओर करना चाहता हूँ या संबंधित व्यक्ति से ईमानदारी से बात करना?” “क्या मैं दूसरे को गिराना चाहता हूँ या संबंध और समुदाय को स्वस्थ देखना चाहता हूँ?” सुनने वाले को भी बचाव करने से पहले पूछना चाहिए: “क्या इन शब्दों में कुछ ऐसा है जिसे मुझे सुनना चाहिए?” बोलने वाला अपना हृदय जाँचे और सुनने वाला वास्तविक समस्या जाँचे। जब दोनों बातें साथ होती हैं, शिकायत की आवाज पश्चाताप और परिवर्तन का अवसर बन सकती है।

5. कुड़कुड़ाहट की जगह को कृतज्ञता और विश्वास से भरिए

केवल कुड़कुड़ाहट को रिक्त करना पर्याप्त नहीं है। उस स्थान को किससे भरते हैं, यह महत्वपूर्ण है। अविश्वास को रिक्त करके विश्वास से भरिए। असंतोष को रिक्त करके संतोष से भरिए। दोषारोपण को रिक्त करके प्रेम से भरिए। भय को रिक्त करके प्रार्थना से भरिए। कुड़कुड़ाहट को रिक्त करके कृतज्ञता और स्तुति से भरिए। हर दिन के अन्त में स्वयं से पूछिए: “आज मैंने किस बात पर कुड़कुड़ाया?” “मैंने किसे दोष दिया?” “उस कुड़कुड़ाहट की जड़ में क्या था?” “क्या मैंने उसे परमेश्वर के पास ले गया?” “मुझे किस बात से पश्चाताप करना चाहिए?” “आज मैं परमेश्वर को किस बात के लिए धन्यवाद दे सकता हूँ?” जब हम परमेश्वर के सामने ये प्रश्न बार-बार पूछते हैं, तो हमारा हृदय धीरे-धीरे बदलता जाएगा। लेकिन कुड़कुड़ाहट को रिक्त करना हमारी इच्छा-शक्ति से ही संभव नहीं। जब दर्द गहरा हो, अन्याय बहुत बड़ा लगे, या लंबे इंतजार के बाद भी परिस्थिति न बदले, तो हमारा हृदय आसानी से हिल जाता है। इसलिए हमें पवित्र आत्मा की सहायता चाहिए। पवित्र आत्मा हमारे हृदय को प्रकाशित करे और कुड़कुड़ाहट की जड़ में छिपे अविश्वास और असंतोष को दिखाए। वह हमें परमेश्वर की वह कृपा याद दिलाए जिसे हम

भूल गए हैं। वह हमें फिर परमेश्वर का वचन सुनाए और उन परिस्थितियों में भी परमेश्वर पर भरोसा करने के लिए संभाले जिन्हें हम नहीं समझते। इसलिए हम प्रार्थना कर सकते हैं: “प्रभु, मेरे हृदय की कुड़कुड़ाहट मुझे दिखाइए। लोगों और परिस्थितियों को दोष देते हुए मेरे भीतर के अविश्वास और असंतोष को अनदेखा न करने दें। मैंने जो गलत किया है उसे ईमानदारी से स्वीकार कर पश्चाताप करने दें, लेकिन दूसरों की गलतियों की जिम्मेदारी भी मुझे अपने ऊपर न लेने दें। अपने दर्द और निराशा को लोगों में फैलाने के बजाय पहले आपके पास लाने दें। आपकी वह कृपा याद दिलाइए जिसे मैं भूल गया हूँ, और मुझे अतीत के मिस्र की लालसा न करने दें। जिन परिस्थितियों को अभी नहीं समझता उनमें भी आपकी भलाई पर विश्वास करने दें, और कुड़कुड़ाहट से रिक्त मेरे हृदय को विश्वास, कृतज्ञता और स्तुति से भर दीजिए।” कुड़कुड़ाहट को रिक्त करने का अर्थ ऐसे जीना नहीं है मानो कोई समस्या ही न हो। दर्द छिपाना भी नहीं है। अन्याय सहते हुए हर हालत में चुप रहना भी नहीं है। कुड़कुड़ाहट को रिक्त करना अपने दर्द और असंतोष को ईमानदारी से परमेश्वर के पास ले जाना है, लेकिन उस दर्द को परमेश्वर और लोगों के प्रति अविश्वास और दोषारोपण में कठोर न होने देना है। और जो मुझे सुधारना है उसे सुधारना, जो दूसरे से कहना है उसे प्रेम में कहना, और जिसे परमेश्वर को सौंपना है उसे परमेश्वर को सौंपना है। कुड़कुड़ाहट कहती है: “मेरी इच्छा के अनुसार क्यों नहीं हो रहा?” लेकिन विश्वास स्वीकार करता है: “अभी न समझने पर भी मैं परमेश्वर पर भरोसा करूँगा।” कुड़कुड़ाहट हमें कमी की ओर देखाती है। कृतज्ञता हमें पहले से मिली कृपा याद दिलाती है। कुड़कुड़ाहट अतीत के मिस्र की ओर देखाती है। विश्वास उस मार्ग की ओर देखता है जिस पर परमेश्वर हमारी अगुवाई करेगा। कुड़कुड़ाहट पहले दूसरे की जिम्मेदारी खोजती है। पश्चाताप पहले परमेश्वर के सामने स्वयं को जाँचता है। इसलिए यदि आज आपके हृदय में कुड़कुड़ाहट उठे, तो उसे न छिपाइए और न लोगों में फैलाइए। उसे परमेश्वर के पास ले जाइए। वचन के सामने अपने हृदय को जाँचिए। जिस बात से पश्चाताप करना है, कीजिए। जिसे सुधारना है, सुधारिए। धन्यवाद देने योग्य बातों को याद कीजिए। और फिर परमेश्वर पर भरोसा कीजिए। कुड़कुड़ाहट पूछती है: “मेरी इच्छा के अनुसार क्यों नहीं हो रहा?” लेकिन विश्वास पूछता है: “इस परिस्थिति में भी मैं परमेश्वर पर कैसे भरोसा करूँ?” कुड़कुड़ाहट को रिक्त करके उस स्थान को परमेश्वर के प्रति विश्वास, कृतज्ञता और स्तुति से भरना—यही “कुड़कुड़ाहट को रिक्त करने” का मार्ग है जिस पर हमें प्रतिदिन चलना है।

अध्याय 12:

“ईर्ष्या” को खाली करना

पिछले अध्याय में हमने देखा कि शिकायत और कुड़कुड़ाहट को अपने भीतर से कैसे खाली किया जाए। शिकायत हमें उस अनुग्रह को देखने से रोकती है जो परमेश्वर ने हमें पहले ही दिया है, और हमारा ध्यान उन चीज़ों पर टिकाती है जो हमें नहीं मिलीं और जो दूसरों के पास हैं। लेकिन जब हमारी दृष्टि बहुत देर तक दूसरों पर टिकी रहती है, तो एक और पाप हमारे हृदय में आसानी से जड़ पकड़ने लगता है। वह है ईर्ष्या। ईर्ष्या वह भावना है जो तब उत्पन्न होती है जब हम दूसरों के पास जो कुछ है उसे देखते हैं और अपने पास जो नहीं है उसके कारण असंतुष्ट होते हैं; और जब दूसरे लोगों को मान्यता, प्रेम और प्रशंसा मिलती है, तो हमारे भीतर बेचैनी उत्पन्न होती है। शुरुआत में यह केवल एक साधारण तुलना जैसी लग सकती है। “उस व्यक्ति का काम मुझसे बेहतर क्यों हो रहा है?” “उस व्यक्ति को मुझसे अधिक मान्यता क्यों मिल रही है?” “उसके पास वह क्यों है जो मेरे पास नहीं है?” “ऐसा क्यों लगता है कि परमेश्वर ने उसे मुझसे अधिक दिया है?” लेकिन जब हम अपने हृदय में ऐसी तुलनाओं को लगातार बढ़ने देते हैं, तो एक समय ऐसा आता है जब दूसरे व्यक्ति की सफलता हमें अपनी असफलता जैसी लगने लगती है। दूसरे का आनंद हमारा दुःख बन जाता है। जब किसी और की प्रशंसा होती है, तो हमें ऐसा लगता है मानो हमारी उपेक्षा की जा रही हो। अंततः हम ऐसे व्यक्ति से भी घृणा करने लग सकते हैं जिसने हमारे साथ कुछ भी गलत नहीं किया है। मैं स्वयं भी ऐसी ईर्ष्या से मुक्त नहीं रहा हूँ। एक समय ऐसा था जब मेरे मन में विश्वास में एक ऐसे भाई के प्रति घृणा उत्पन्न हुई जिसने मेरे साथ कुछ भी गलत नहीं किया था। उसने मुझे कोई विशेष हानि भी नहीं पहुँचाई थी। फिर भी जब मैंने देखा कि उसे मुझसे अधिक मान्यता और प्रशंसा मिल रही है, तो मेरे मन में बेचैनी हुई। अब पीछे मुड़कर देखने पर समझ आता है कि समस्या उस व्यक्ति में नहीं थी। समस्या मेरे अपने हृदय में थी। मैं मान्यता पाना चाहता था। मैं ऊँचा उठाया जाना चाहता था। मैं दूसरों से बेहतर दिखाई देना चाहता था। इसलिए जब किसी और को ऊँचा उठाया गया, तो मुझे ऐसा लगा जैसे मुझे नीचा किया जा रहा हो। इस भावना के केंद्र में घमण्ड था। ईर्ष्या अंततः तुलना से शुरू होती है, घमण्ड में बढ़ती है और घृणा का फल उत्पन्न करती है। इसलिए ईर्ष्या को खाली करने के लिए किसी दूसरे व्यक्ति को बदलने का प्रयास करने से पहले हमें परमेश्वर के सामने अपने हृदय को जाँचना चाहिए। “मैं उस व्यक्ति की सफलता से प्रसन्न क्यों नहीं हो सकता?” “जब उस व्यक्ति की प्रशंसा होती है तो मुझे बेचैनी क्यों होती है?” “मैं क्यों सोचता हूँ कि मुझे उससे अधिक मान्यता मिलनी चाहिए?” इन प्रश्नों के सामने हमें ईमानदार होना चाहिए।

ईर्ष्या लोगों को देखने की हमारी दृष्टि बदल देती है

ईर्ष्या कितनी भयानक हो सकती है, इसका सबसे स्पष्ट उदाहरण देने वाले व्यक्तियों में से एक शाऊल है। जब दाऊद गोलियत को पराजित करके लौटा, तब इस्राएल की स्त्रियों ने गाया: “शाऊल ने तो हजारों को, और दाऊद ने लाखों को मारा है” (1 शमूएल 18:7)। यह सुनकर शाऊल बहुत अप्रसन्न हुआ, क्योंकि उसे लगा कि लोग दाऊद को उससे अधिक महत्व दे रहे हैं। और बाइबल कहती है: “उस दिन से शाऊल दाऊद को संदेह की दृष्टि से देखने लगा” (पद 9)। उस समय तक दाऊद शाऊल के प्रति विश्वासयोग्य था। वह शाऊल के लिए वीणा बजाता था। वह इस्राएल के लिए युद्ध करता था। उसने गोलियत से लड़ते समय अपने प्राणों को जोखिम में डाला था। लेकिन जब शाऊल के हृदय में ईर्ष्या प्रवेश कर गई, तो दाऊद को देखने की उसकी दृष्टि बदल गई। एक विश्वासयोग्य सेवक प्रतिद्वंद्वी दिखाई देने लगा। परमेश्वर द्वारा उपयोग किया जा रहा व्यक्ति ऐसा दिखाई देने लगा मानो वह उसकी जगह छीनना चाहता हो। ईर्ष्या ने दाऊद को नहीं बदला। ईर्ष्या ने शाऊल की दृष्टि बदल दी। ईर्ष्या तथ्यों को नहीं बदलती, लेकिन उन तथ्यों को देखने वाली हमारी दृष्टि को बदल देती है। इसी कारण ईर्ष्या खतरनाक है। हो सकता है कि हम किसी व्यक्ति से इसलिए घृणा न करें कि उसने कुछ गलत किया है। बल्कि हम उससे इसलिए घृणा करने लगें क्योंकि उसके साथ सब कुछ अच्छा हो रहा है। दूसरे व्यक्ति को प्रेम मिलता देखकर हमें बेचैनी हो सकती है। किसी और को मान्यता मिलती देखकर हम उसे नापसंद करने लग सकते हैं। दूसरे की सफलता देखकर हमें ऐसा लग सकता है मानो हम स्वयं नीचे किए गए हों। ऐसे समय समस्या उस व्यक्ति में नहीं भी हो सकती है। समस्या हमारे अपने हृदय में हो सकती है।

ईर्ष्या हमारे हृदय में लोगों को प्रतिद्वंद्वी बना देती है

जब ईर्ष्या हमारे हृदय में प्रवेश करती है, तो एक भाई भी प्रतिद्वंद्वी बन सकता है। सेवकाई में साथ काम करने वाला व्यक्ति प्रतिद्वंद्वी बन सकता है। एक मित्र प्रतिद्वंद्वी बन सकता है। यहाँ तक कि परिवार का कोई सदस्य भी प्रतिद्वंद्वी बन सकता है। कैन ने अपने छोटे भाई हाबिल को मार डाला। इसलिए नहीं कि हाबिल ने उसे कोई हानि पहुँचाई थी। 1 यूहन्ना 3:12 बताता है कि कैन ने अपने भाई की हत्या क्यों की: “उसके काम बुरे थे, और उसके भाई के काम धर्म के थे।” हाबिल की धार्मिकता ने कैन के हृदय को बेचैन कर दिया। तुलना ईर्ष्या बन गई। ईर्ष्या घृणा बन गई। और अंततः घृणा हत्या के रूप में प्रकट हुई। हम शायद इतनी चरम सीमा तक न जाएँ। लेकिन अपने हृदय में हम किसी व्यक्ति को दूर कर सकते हैं। हम उसके असफल होने की कामना कर सकते हैं। जब हम उसके बारे में कोई बुरी खबर सुनते हैं, तो हमारे हृदय का एक भाग भीतर ही भीतर प्रसन्न भी हो सकता है। जब हम उसकी कोई कमजोरी देखते हैं, तो हमें राहत मिल सकती है। “देखा, वह भी कोई इतना महान नहीं है।” यदि हमारे भीतर ऐसी

भावना है, तो हमें परमेश्वर के सामने उसे जाँचना चाहिए। प्रेम दूसरे की असफलता से प्रसन्न नहीं होता। प्रेम स्वयं को ऊँचा उठाने के लिए दूसरे को नीचे नहीं गिराता। इसलिए ईर्ष्या को खाली करना केवल दूसरों से ईर्ष्या करना बंद करना नहीं है। इसका अर्थ उस हृदय को भी परमेश्वर के सामने खाली करना है जो दूसरे को प्रतिद्वंद्वी मानता है, उसकी खुशी से बेचैन होता है और भीतर ही भीतर उसकी असफलता चाहता है।

ईर्ष्या हमें परमेश्वर द्वारा सौंपी गई बुलाहट को भुला देती है

शाऊल की त्रासदी केवल दाऊद से घृणा करने तक सीमित नहीं रही। ईर्ष्या के कारण वह अपनी बुलाहट को भूल गया। शाऊल इस्राएल का राजा था। उसे परमेश्वर द्वारा सौंपे गए लोगों की देखभाल करनी थी और राष्ट्र की रक्षा करनी थी। लेकिन जब वह दाऊद के प्रति ईर्ष्या में फँस गया, तो उसका ध्यान पलिशतियों से अधिक दाऊद पर केंद्रित हो गया। उसने दाऊद को पकड़ने के लिए सैनिकों को लगाया। उसने दाऊद का पीछा करने में अपना समय और शक्ति खर्च की। दूसरे व्यक्ति पर अपनी दृष्टि टिकाए रहने के कारण उसने अपने सौंपे गए कार्य को खो दिया। हमारे साथ भी ऐसा हो सकता है। हम किसी दूसरे पास्टर की सेवकाई को लगातार देखते रहें और परमेश्वर द्वारा हमें सौंपी गई कलीसिया को भूल जाएँ। हम किसी दूसरे व्यक्ति के व्यवसाय और सफलता को देखते रहें और अपने सौंपे गए काम में विश्वासयोग्य न रहें। हम अपने बच्चों की तुलना दूसरे परिवारों के बच्चों से करें और परमेश्वर द्वारा हमें दिए गए अपने बच्चों की सुंदरता को देखना भूल जाएँ। हम दूसरे के वरदानों से ईर्ष्या करें और परमेश्वर द्वारा हमें दिए गए वरदानों का उपयोग न करें। ईर्ष्या हमें दूसरों के जीवन को बहुत अधिक देखने पर मजबूर करती है। और ऐसा करते हुए हम उस जीवन को खो सकते हैं जिसे हमें स्वयं जीना है। इसलिए हमें अपना प्रश्न बदलना चाहिए। यह पूछने के बजाय: "उस व्यक्ति के साथ सब कुछ इतना अच्छा क्यों हो रहा है?" हमें पूछना चाहिए: "आज परमेश्वर ने मुझे क्या सौंपा है?" यदि दूसरा व्यक्ति मुझसे बड़े काम करता दिखाई देता है, तो भी ठीक है। यदि दूसरे व्यक्ति की मुझसे अधिक प्रशंसा होती है, तो भी ठीक है। यदि दूसरे व्यक्ति के वरदान मेरे वरदानों से अधिक दिखाई देते हैं, तो भी ठीक है। क्योंकि परमेश्वर ने उसे कुछ सौंपा है और परमेश्वर ने मुझे भी कुछ सौंपा है। तुलना मत कीजिए। विश्वासयोग्य रहिए। प्रतिस्पर्धा मत कीजिए। अपनी बुलाहट पूरी कीजिए।

हमें लोगों से मान्यता पाने की इच्छा को जाँचना चाहिए

शाऊल की ईर्ष्या की गहराई में लोगों से मान्यता पाने की इच्छा भी थी। जब शमूएल ने उसके पाप के लिए उसे डाँटा, तब भी शाऊल ने कहा: "मेरी प्रजा के पुरनियों और इस्राएल के सामने मेरा आदर कर" (1 शमूएल 15:30)।

लोगों से मान्यता पाने की इच्छा अपने आप में हमेशा पाप नहीं है। हम सभी प्रेम और मान्यता पाना चाहते हैं। समस्या तब शुरू होती है जब लोगों की मान्यता परमेश्वर से अधिक महत्वपूर्ण हो जाती है। यदि मैं तभी खुश होता हूँ जब लोग मेरी प्रशंसा करते हैं, यदि किसी दूसरे की प्रशंसा होने पर मुझे बेचैनी होती है, यदि मेरा नाम प्रसिद्ध होने पर ही मुझे संतोष मिलता है, और यदि दूसरे को मुझसे अधिक मान्यता मिलने पर मुझे चोट पहुँचती है, तो मुझे परमेश्वर के सामने अपने हृदय को जाँचना चाहिए। यीशु ने हमें एक बिल्कुल अलग मार्ग दिखाया: “जैसा मसीह यीशु का स्वभाव था वैसा ही तुम्हारा भी स्वभाव हो” (फिलिप्पियों 2:5)। यीशु ने स्वयं को खाली किया और दास का स्वरूप धारण किया। उन्होंने स्वयं को ऊँचा उठाने के लिए दूसरों को नीचा नहीं किया। इसलिए पौलुस हमें समझाता है: “विरोध या झूठी बड़ाई के लिए कुछ न करो, पर दीनता से एक दूसरे को अपने से अच्छा समझो” (पद 3)। यहीं हमें ईर्ष्या को खाली करने का मार्ग दिखाई देता है। हमें ऊँचा उठाए जाने की इच्छा को खाली करके मसीह की नम्रता को अपनाना चाहिए। यह पूछने के बजाय: “लोग मुझे कितना मानते हैं?” हमें पूछना चाहिए: “मैं परमेश्वर के सामने कितनी विश्वासयोग्यता से जी रहा हूँ?” लोग न जानें, परमेश्वर जानते हैं। लोग न देखें, परमेश्वर देखते हैं। लोग प्रशंसा न करें, फिर भी परमेश्वर हमारी विश्वासयोग्यता जानते हैं।

आसाप की तरह लोगों से दृष्टि हटाकर परमेश्वर की ओर देखें

ईर्ष्या की समस्या को बड़ी ईमानदारी से दिखाने वाला एक और व्यक्ति आसाप है। भजन संहिता 73 में आसाप स्वीकार करता है: “जब मैंने दुष्टों का कुशल देखा, तब मैं अभिमानियों से डाह करने लगा” (भजन संहिता 73:3)। दुष्टों को फलते-फूलते देखकर आसाप का मन विचलित हो गया। ऐसा लगता था कि परमेश्वर की उपेक्षा करने वाले लोग उससे अधिक सफल हो रहे थे, जबकि वह स्वयं विश्वास के साथ जीने का प्रयास कर रहा था। इस कारण वह लगभग गिरने वाला था। लेकिन फिर एक निर्णायक परिवर्तन हुआ: “जब तक कि मैं परमेश्वर के पवित्रस्थान में न गया; तब मैंने उनका परिणाम समझा” (पद 17)। सबसे पहले आसाप की परिस्थितियाँ नहीं बदलीं। उसकी दृष्टि बदली। जो आँखें लोगों पर टिकी थीं, वे फिर परमेश्वर की ओर मुड़ गईं। और अंततः उसने स्वीकार किया: “स्वर्ग में मेरा और कौन है? तेरे संग रहते हुए मैं पृथ्वी पर और कुछ नहीं चाहता” (पद 25)। यह ईर्ष्या को खाली करने का एक महत्वपूर्ण मार्ग है। जब ईर्ष्या उठे, तो दूसरे व्यक्ति को और अधिक मत देखिए। परमेश्वर को देखिए। यह तुलना करते मत रहिए कि किसके पास अधिक है। यह देखिए कि परमेश्वर ने आपको क्या दिया है। यह मत गिनिए कि किसकी अधिक प्रशंसा हो रही है। यह देखिए कि परमेश्वर ने आपको क्या काम सौंपा है। यह तुलना मत कीजिए कि किसकी सेवकाई बड़ी है। आज परमेश्वर द्वारा आपको दी गई बुलाहट में विश्वासयोग्य रहिए। ईर्ष्या को खाली करना उस दृष्टि को, जो दूसरों पर टिकी हुई थी, परमेश्वर की ओर फिर से मोड़ना है।

परमेश्वर द्वारा दूसरों को दिए गए अनुग्रह में साथ मिलकर आनन्दित हों

ईर्ष्या दूसरे की खुशी को मेरा दुःख बना देती है। प्रेम इसके विपरीत करता है। प्रेम दूसरे की खुशी में साथ आनन्दित होता है। जब किसी की प्रशंसा हो, उसे बधाई दें। जब कोई अच्छा परिणाम प्राप्त करे, उसके साथ आनन्दित हों। जब किसी और के बच्चे अच्छा करें, उन्हें आशीष दें। जब दूसरी कलीसिया बढ़े और दूसरा पास्टर परमेश्वर द्वारा बहुमूल्य रीति से उपयोग किया जाए, तो परमेश्वर को धन्यवाद दें। जब किसी सहकर्मि को पदोन्नति मिले, उसे बधाई दें। जब किसी मित्र का व्यवसाय अच्छा चले, उसके साथ आनन्दित हों। शुरुआत में शायद आपका हृदय आपके शब्दों के साथ न चले। आप मुँह से बधाई दे सकते हैं, जबकि हृदय में अभी भी बेचैनी हो। ऐसे समय उस हृदय को भी परमेश्वर के सामने ले आइए। “परमेश्वर, मेरे भीतर के इस हृदय को दिखाइए जो उस अनुग्रह से सच्चे मन से आनन्दित नहीं हो सकता जो आपने इस व्यक्ति को दिया है। मेरे भीतर तुलना करने वाले इस हृदय को खाली कीजिए। आपने इस व्यक्ति को जो अनुग्रह दिया है, उसमें मुझे साथ आनन्दित होना सिखाइए।” और उस व्यक्ति के लिए प्रार्थना कीजिए: “प्रभु, इस व्यक्ति को और भी अधिक उपयोग कीजिए।” “इस परिवार को आशीष दीजिए।” “इस व्यक्ति की सेवकाई के द्वारा आपका राज्य और अधिक बढ़े।” जब हम उस व्यक्ति को आशीष देना शुरू करते हैं जिससे हमें ईर्ष्या होती है, तो हमारा हृदय भी धीरे-धीरे बदलने लगता है। ईर्ष्या पूछती है: “आपने यह उस व्यक्ति को क्यों दिया?” लेकिन प्रेम स्वीकार करता है: “धन्यवाद कि आपने उस व्यक्ति को भी अपना अनुग्रह दिया।”

ईर्ष्या को खाली करें और धन्यवाद देना सीखें

ईर्ष्या से भरे हृदय में धन्यवाद के लिए स्थान बनना कठिन है। क्योंकि ईर्ष्या हमेशा उस चीज़ को देखती है जो मेरे पास नहीं है। “मेरे पास यह क्यों नहीं है?” “अच्छी बातें हमेशा उसी व्यक्ति के साथ क्यों होती हैं?” “उसे मुझसे अधिक क्यों मिला है?” जब हमारा हृदय इन विचारों से भर जाता है, तो हम उस अनुग्रह को नहीं देख पाते जो परमेश्वर ने हमें पहले ही दिया है। इसलिए ईर्ष्या को खाली करने के लिए हमें धन्यवाद देना सीखना चाहिए। परमेश्वर ने जो परिवार आपको दिया है, उसके लिए धन्यवाद दें। उन्होंने जो कलीसिया आपको सौंपी है, उसके लिए धन्यवाद दें। उन्होंने जो वरदान आपको दिए हैं, उनके लिए धन्यवाद दें। काम करने के अवसर के लिए धन्यवाद दें। आपके साथ चलने वाले लोगों के लिए धन्यवाद दें। आज तक परमेश्वर ने जिस अनुग्रह से आपका मार्गदर्शन किया है, उसके लिए धन्यवाद दें। और सबसे बढ़कर, यीशु मसीह में उद्धार पाने और परमेश्वर की संतान बनाए जाने के अनुग्रह के लिए धन्यवाद दें। ईर्ष्या उस चीज़ को बड़ा बनाती है जिसकी हमें कमी है। धन्यवाद हमें वह देखने देता है जो हमें मिल चुका है। ईर्ष्या अभाव को बड़ा करती है। धन्यवाद अनुग्रह को बड़ा करता है। धन्यवाद देने से वह चीज़ अचानक

हमारे पास नहीं आ जाती जो हमारे पास नहीं है। लेकिन धन्यवाद हमारी आँखें खोल देता है ताकि हम उस अनुग्रह को देख सकें जो हमें पहले ही दिया जा चुका है।

यदि कोई आपसे ईर्ष्या करता है, तो आप भी ईर्ष्यालु व्यक्ति न बनें

कभी-कभी ऐसा नहीं होता कि मैं किसी दूसरे व्यक्ति से ईर्ष्या करता हूँ। बल्कि कोई दूसरा व्यक्ति मुझसे ईर्ष्या कर सकता है। यूसुफ के भाइयों ने यूसुफ से ईर्ष्या की। अपने पिता के यूसुफ के प्रति प्रेम और यूसुफ के स्वप्नों के कारण उनके हृदय में घृणा उत्पन्न हुई और अंततः उन्होंने यूसुफ को मिस्र जाने के लिए बेच दिया। उन्होंने जो किया वह स्पष्ट रूप से बुरा था। लेकिन मनुष्य की बुराई परमेश्वर की योजना को नष्ट नहीं कर सकती। कई वर्षों बाद यूसुफ ने अपने भाइयों से कहा: “परमेश्वर ने मुझे तुम्हारे आगे भेजा कि तुम्हारे प्राण बचाए” (उत्पत्ति 45:5)। यूसुफ ने अपने भाइयों की बुराई को अच्छा नहीं कहा। लेकिन उसने अपने भाइयों की बुराई से बड़ी परमेश्वर की प्रभुता और योजना को देखा। यह हमें एक महत्वपूर्ण शिक्षा देता है। कोई मुझसे ईर्ष्या कर सकता है। कोई मुझे गलत समझ सकता है। मेरा भला होता देखकर कोई बेचैन हो सकता है। कोई मुझे नीचे गिराने का प्रयास कर सकता है। लेकिन इसका अर्थ यह नहीं कि मुझे भी उस व्यक्ति से घृणा करनी चाहिए या उसके साथ प्रतिस्पर्धा करनी चाहिए। परमेश्वर की प्रभुता मनुष्य की ईर्ष्या से बड़ी है। दूसरे की ईर्ष्या के कारण अपनी बुलाहट मत छोड़िए। परमेश्वर ने आपको जिस स्थान पर रखा है, वहाँ विश्वासयोग्य रहिए। लोगों की प्रतिक्रिया से अधिक परमेश्वर की अगुवाई को देखिए।

जिस ईर्ष्या को खाली करना है और जिस पवित्र उत्साह को अपनाना है, उनमें भेद करें

बाइबल केवल पापपूर्ण ईर्ष्या के विषय में ही नहीं बताती जिसे हमें खाली करना चाहिए। गिनती 25 में परमेश्वर बताते हैं कि पीनहास ने परमेश्वर की पवित्रता के लिए उत्साह दिखाया। यहाँ महत्वपूर्ण बात यह है कि हमारे हृदय के केंद्र में क्या है। शाऊल की ईर्ष्या स्वयं के लिए थी। वह अपनी स्थिति और अपने सम्मान की रक्षा करने वाली ईर्ष्या थी। लेकिन पीनहास का उत्साह अपना नाम ऊँचा करने की इच्छा से नहीं, बल्कि परमेश्वर की पवित्रता को बहुमूल्य समझने से उत्पन्न हुआ था। इसलिए हमें स्वयं से पूछना चाहिए: “मैं अभी क्रोधित क्यों हूँ—क्या वास्तव में परमेश्वर की महिमा के लिए?” “या इसलिए कि मेरे अभिमान को चोट पहुँची है?” “क्या मैं इसलिए दुःखी हूँ कि परमेश्वर की इच्छा का उल्लंघन हुआ है?” “या इसलिए कि मुझे मान्यता नहीं मिली?” “क्या यह उत्साह प्रेम से उत्पन्न हुआ है?” “या भय और अधिकार जताने की इच्छा से?” वैवाहिक संबंध में भी यह प्रश्न महत्वपूर्ण है। पति-पत्नी को परमेश्वर द्वारा दिए गए विवाह के वाचा-संबंध को बहुमूल्य समझना और विश्वासयोग्यता से उसकी रक्षा करना चाहिए। लेकिन केवल यह कहकर कि हम अपने जीवनसाथी से प्रेम करते हैं, हम उसे अत्यधिक नियंत्रित करने, उस पर निगरानी रखने और

उसे अपनी संपत्ति समझने की इच्छा को “पवित्र ईर्ष्या” नहीं कह सकते। प्रेम संबंध की रक्षा करता है, लेकिन दूसरे व्यक्ति को अपनी संपत्ति नहीं बनाता। जिस ईर्ष्या को हमें खाली करना है, वह वह ईर्ष्या है जो अपनी महिमा और स्थिति की रक्षा करने के लिए दूसरों को नीचे गिराना चाहती है। और जिस उत्साह को हमें अपनाना है, वह परमेश्वर के प्रति प्रेम और उनकी इच्छा तथा पवित्रता को बहुमूल्य मानने से उत्पन्न होता है।

ईर्ष्या को खाली करें और प्रेम में जीवन बिताएँ

ईर्ष्या को खाली करने का उद्देश्य केवल ऐसा व्यक्ति बनना नहीं है जो अब दूसरों से ईर्ष्या नहीं करता। उद्देश्य ऐसा व्यक्ति बनना है जो प्रेम करता है। प्रेम दूसरों की भलाई चाहता है। दूसरों का भला होने पर प्रेम उनके साथ आनन्दित होता है। प्रेम दूसरे की सफलता को अपनी असफलता नहीं मानता। प्रेम स्वीकार करता है कि परमेश्वर ने प्रत्येक व्यक्ति को अलग-अलग वरदान और अलग-अलग बुलाहट दी है। इसलिए जब ईर्ष्या उठे, तो हमें इस प्रकार प्रार्थना करनी चाहिए: “प्रभु, मुझे दिखाइए कि यह व्यक्ति मुझे क्यों असहज करता है।” “मेरे भीतर की तुलना और घमण्ड को खाली कीजिए।” “लोगों से मान्यता पाने की मेरी इच्छा को खाली कीजिए।” “आपने इस व्यक्ति को जो अनुग्रह दिया है, उसमें मुझे आनन्दित होना सिखाइए।” “आपने मुझे जो बुलाहट दी है, उसमें मुझे विश्वासयोग्य रहने में सहायता कीजिए।” और फिर वास्तव में प्रेम को चुनिए। बधाई दीजिए। उत्साहित कीजिए। आशीष दीजिए। प्रार्थना कीजिए। दूसरों की खुशी में साथ आनन्दित होइए। यदि आपका हृदय तुरंत आपके कार्यों के साथ न भी चले, फिर भी परमेश्वर के वचन की आज्ञाकारिता में प्रेम के कार्य करना शुरू कीजिए। इस प्रक्रिया में पवित्र आत्मा हमारे हृदय को भी बदलेंगे।

“ईर्ष्या” को खाली करने के सिद्धांत और व्यावहारिक दिशानिर्देश

तो फिर हम अपने दैनिक जीवन में ईर्ष्या को कैसे खाली कर सकते हैं? ईर्ष्या दूसरों के साथ तुलना से शुरू होती है और आसानी से घमण्ड तथा घृणा में बढ़ सकती है। इसलिए ईर्ष्या को खाली करने के लिए हमें दूसरों पर टिकी हुई अपनी दृष्टि को परमेश्वर की ओर मोड़ना होगा, तुलना के स्थान पर धन्यवाद को रखना होगा और परमेश्वर द्वारा हमें सौंपी गई बुलाहट में विश्वासयोग्य रहना होगा।

1. जब ईर्ष्या उठे, पहचानिए कि आप किससे और किस बात में अपनी तुलना कर रहे हैं

ईर्ष्या तुलना से शुरू होती है। इसलिए जब आपका हृदय बेचैन होने लगे, तो सबसे पहले स्वयं से पूछिए: “मैं अभी अपनी तुलना किससे कर रहा हूँ?” “मैं किस बात की तुलना कर रहा हूँ?” धन-संपत्ति? रूप-रंग? बच्चे? काम? सेवकाई का आकार? कलीसिया का आकार? लोगों की प्रशंसा? किसी दूसरे व्यक्ति के वरदान? जब आप पहचान लें कि आप किस बात की तुलना कर रहे हैं, तो उन विचारों को और अधिक मत बढ़ाइए। अपनी दृष्टि परमेश्वर की ओर मोड़िए। परमेश्वर ने उस व्यक्ति को जो दिया है, वह उसकी जिम्मेदारी और सौंपा हुआ भाग है। परमेश्वर ने मुझे जो दिया है, वह मुझे सौंपा गया भाग है। तुलना हमें किसी और का जीवन जीने की ओर ले जाती है। बुलाहट हमें वह जीवन जीने की ओर ले जाती है जो परमेश्वर ने हमें सौंपा है।

2. परमेश्वर द्वारा दूसरों को दिए गए अनुग्रह को जानबूझकर आशीष दें

जिस व्यक्ति से आपको ईर्ष्या होती है, उसे अपने हृदय में प्रतिद्वंद्वी मत बनाते रहिए। उसके लिए प्रार्थना कीजिए। उसे आशीष दीजिए और उसके भले की कामना कीजिए। जब उसके साथ कुछ अच्छा हो, उसे बधाई दीजिए। जब परमेश्वर उसका उपयोग करें, धन्यवाद दीजिए। परिवार में भाई-बहनों की तुलना न करें। माता-पिता विशेष रूप से सावधान रहें कि एक बच्चे की तुलना दूसरे बच्चे से न करें। बच्चों को भी अपने भाई-बहनों को मिले अनुग्रह को प्रतिस्पर्धा का कारण नहीं बनाना चाहिए। कलीसिया में दूसरी कलीसियाओं और दूसरे पास्टरों के फल को प्रतिस्पर्धा की वस्तु न बनाइए। कार्यस्थल पर सहकर्मियों की सफलता को अपनी असफलता न समझिए। परमेश्वर द्वारा दूसरे को दिए गए अनुग्रह में साथ आनन्दित होना ईर्ष्या को खाली करने का व्यावहारिक अभ्यास है।

3. लोगों की मान्यता के बजाय परमेश्वर के सामने विश्वासयोग्यता खोजें

यदि आप लगातार सोचते हैं: “लोग मुझे कितना मानते हैं?” तो आप दूसरों को मिलने वाली प्रशंसा के प्रति अधिक संवेदनशील हो जाएंगे। इसलिए प्रश्न बदलें: “क्या मैं परमेश्वर के सामने विश्वासयोग्य हूँ?” भले ही कोई आपको न पहचाने, विश्वासयोग्य रहिए। भले ही आपका नाम प्रसिद्ध न हो, सेवा कीजिए। भले ही दूसरे को प्रशंसा मिले, उसके साथ आनन्दित होइए। यदि आपको ऐसा भी लगे कि आपके किए हुए काम का श्रेय किसी और को मिल रहा है, तो पहले परमेश्वर के सामने अपने हृदय को जाँचिए। निश्चय ही जहाँ उचित मूल्यांकन और न्याय की आवश्यकता हो, वहाँ आप तथ्यों को सही रूप से बता सकते हैं। लेकिन लोगों की प्रशंसा को अपने हृदय का स्वामी मत बनने दीजिए। ईर्ष्या को खाली करने वाला व्यक्ति लोगों की तालियों से अधिक परमेश्वर की दृष्टि को महत्व देता है।

4. परमेश्वर द्वारा पहले से दिए गए अनुग्रह के लिए प्रतिदिन धन्यवाद दें

जब ईर्ष्या उठे, तो उस चीज़ के बारे में सोचने के बजाय जो आपको नहीं मिली, उन चीज़ों को गिनिए जो आपको मिल चुकी हैं। आज जिन बातों के लिए आप धन्यवाद दे सकते हैं, उन्हें लिखना भी सहायक हो सकता है। अपने परिवार, स्वास्थ्य, कलीसिया, काम, मित्रों, वरदानों, सेवकाई, उद्धार, परमेश्वर के वचन और प्रार्थना करने के अनुग्रह को याद कीजिए। धन्यवाद का अर्थ यह कहना नहीं है कि मेरे पास किसी दूसरे से अधिक है। इसका अर्थ यह स्वीकार करना है कि परमेश्वर ने मुझे जो अनुग्रह दिया है वह पर्याप्त रूप से बहुमूल्य है। जब ईर्ष्या कहती है: “मेरे पास यह क्यों नहीं है?” तब धन्यवाद स्वीकार करता है: “परमेश्वर ने मुझे भी भरपूर अनुग्रह दिया है।”

5. दूसरों पर ध्यान केंद्रित करने के बजाय परमेश्वर द्वारा आपको सौंपी गई बुलाहट पर ध्यान दें

ईर्ष्या उठने पर हम स्वयं से जो सबसे अच्छे प्रश्न पूछ सकते हैं उनमें से एक है: “परमेश्वर ने अभी मुझे क्या सौंपा है?” अपना सारा समय किसी दूसरे व्यक्ति की सेवकाई देखने में मत लगाइए। दूसरों के जीवन का मूल्यांकन करने में अपने हृदय को बँधने मत दीजिए। परमेश्वर द्वारा आपको दिए गए परिवार से प्रेम कीजिए। परमेश्वर द्वारा आपको सौंपी गई कलीसिया की सेवा कीजिए। परमेश्वर द्वारा दिए गए कार्यस्थल पर ईमानदारी से काम कीजिए। परमेश्वर द्वारा दिए गए वरदानों का उपयोग कीजिए। आज जो आज्ञाकारिता आपको दिखानी है, उसमें विश्वासयोग्य रहिए। शाऊल ने दाऊद पर अपनी दृष्टि टिकाने के कारण अपनी बुलाहट खो दी। आसाप दुष्टों की समृद्धि पर दृष्टि टिकाने के कारण लगभग गिर गया। लेकिन जब उसने अपनी दृष्टि फिर परमेश्वर की ओर मोड़ी, तो उसे फिर से मार्ग

मिल गया। लोगों से अपनी दृष्टि हटाकर परमेश्वर की ओर मोड़िए और तुलना से अपने हृदय को हटाकर बुलाहट की ओर मोड़िए। फिर भी, ईर्ष्या को खाली करना केवल हमारी इच्छाशक्ति से संभव नहीं है। “अब से मैं कभी दूसरों से अपनी तुलना नहीं करूँगा।” “जब किसी दूसरे का भला होगा, मैं हमेशा उसके लिए खुश रहूँगा।” केवल ऐसे निर्णय लेने से हमारे हृदय की गहराई में छिपी ईर्ष्या तुरंत समाप्त नहीं हो जाती। हमें परमेश्वर के अनुग्रह और पवित्र आत्मा की सहायता की आवश्यकता है। पवित्र आत्मा को हमारे हृदय में छिपी तुलना और घमण्ड को दिखाना होगा। उन्हें हमें यह पहचानने में सहायता करनी होगी कि दूसरे का भला होने पर हमारे भीतर कैसी बेचैनी उठती है। उन्हें लोगों की प्रशंसा पाने की हमारी इच्छा को खाली करना होगा और हमारी आँखें खोलनी होंगी ताकि हम परमेश्वर द्वारा हमें दिए गए अनुग्रह को देख सकें। और उन्हें हमारे भीतर मसीह का प्रेम उत्पन्न करना होगा ताकि हम सच्चे मन से दूसरों की खुशी में आनन्दित हो सकें। इसलिए हम इस प्रकार प्रार्थना कर सकते हैं: “प्रभु, मेरे भीतर की ईर्ष्या, तुलना और घमण्ड को मुझे दिखाइए। उस हृदय को खाली कीजिए जो दूसरों का भला देखकर बेचैन होता है और दूसरों की प्रशंसा होने पर ऐसा महसूस करता है मानो मुझे नीचा किया गया हो। लोगों की मान्यता और प्रशंसा पाने की मेरी इच्छा को खाली कीजिए और मुझे इस बात में संतोष दीजिए कि आप मुझे जानते हैं और मुझसे प्रेम करते हैं। आपने दूसरों को जो अनुग्रह दिया है, उसमें मुझे आनन्दित होकर उन्हें आशीष देने में सहायता कीजिए, और आपने मुझे जो अनुग्रह दिया है उसके लिए धन्यवाद देना सिखाइए। मुझे लोगों को देखकर उनके साथ प्रतिस्पर्धा करने से बचाइए और आपने मुझे जो बुलाहट दी है उसमें विश्वासयोग्य रहने में सहायता कीजिए। ईर्ष्या से खाली हुए मेरे हृदय को मसीह की नम्रता, धन्यवाद और प्रेम से भर दीजिए।”

ईर्ष्या को खाली करने का अर्थ ऐसा व्यक्ति बनना नहीं है जिसे दूसरों की कोई परवाह नहीं। और इसका अर्थ दूसरों की सफलता को अनदेखा करना भी नहीं है। ईर्ष्या को खाली करना दूसरे की सफलता को अपनी असफलता न समझना है। यह परमेश्वर द्वारा दूसरों को दिए गए अनुग्रह में साथ आनन्दित होना, परमेश्वर द्वारा हमें दिए गए अनुग्रह के लिए धन्यवाद देना और परमेश्वर द्वारा हमें सौंपी गई बुलाहट में विश्वासयोग्य जीवन जीना है। यदि कोई मुझसे ऊँचा उठता है, तो भी ठीक है। यदि किसी दूसरे की मुझसे अधिक प्रशंसा होती है, तो भी ठीक है। यदि कोई दूसरा मुझसे बड़े काम करता हुआ दिखाई देता है, तो भी ठीक है। क्योंकि परमेश्वर मुझे जानते हैं। क्योंकि परमेश्वर मुझसे प्रेम करते हैं। क्योंकि परमेश्वर ने मुझे भी अनुग्रह दिया है। और क्योंकि परमेश्वर ने मुझे भी एक बुलाहट सौंपी है। इसलिए दूसरे की खुशी को अपना दुःख मत बनाइए। दूसरे की सफलता को अपनी असफलता मत बनाइए। परमेश्वर द्वारा दूसरे को दिए गए अनुग्रह को ऐसा मत समझिए मानो परमेश्वर ने आपको अस्वीकार कर दिया हो। आसाप की तरह लोगों से अपनी दृष्टि हटाकर परमेश्वर की ओर मोड़िए। यूसुफ की तरह विश्वास कीजिए कि परमेश्वर की प्रभुता मनुष्य की बुराई से बड़ी है। और सबसे बढ़कर, यीशु मसीह की तरह स्वयं को ऊँचा उठाने की इच्छा को खाली करके नम्रता से सेवा कीजिए। ईर्ष्या पूछती है: “उस व्यक्ति के पास वह क्यों है जो मेरे पास नहीं है?” लेकिन विश्वास स्वीकार करता

है: “परमेश्वर ने उस व्यक्ति को जो अनुग्रह दिया है, उसमें मैं आनन्दित होऊँगा, और परमेश्वर ने मुझे जो अनुग्रह दिया है उसके लिए धन्यवाद दूँगा।” ईर्ष्या को खाली करना उस दृष्टि को, जो दूसरों पर टिकी हुई थी, फिर से परमेश्वर की ओर मोड़ना है। यह तुलना, घमण्ड और घृणा को खाली करना और उस खाली स्थान में मसीह की नम्रता, धन्यवाद और प्रेम को बढ़ने देना है। यही **“ईर्ष्या” को खाली करने का मार्ग** है जिस पर हमें प्रतिदिन चलना है।

भाग 3:
रिक्त किए गए स्थान को मसीह से भरना

अध्याय 13:

मसीह से भरना

इस पूरी पुस्तक में जिस विषय पर हम लगातार मनन करते आए हैं, वह है "खाली करना।" हमें अपने भीतर से घमंड को खाली करना है। हमें लालच को खाली करना है। हमें पाखंड को खाली करना है। हमें झूठ को खाली करना है। हमें घृणा को खाली करना है। हमें बुरे विचारों को खाली करना है। हमें व्यभिचारी और अशुद्ध कामनाओं को खाली करना है। हमें शिकायत और कुड़कुड़ाहट को खाली करना है। हमें ईर्ष्या को खाली करना है। परंतु अब अंत में एक प्रश्न है जिसे हमें अवश्य पूछना चाहिए: "हमें अपने आपको खाली क्यों करना चाहिए?" और एक और प्रश्न है: "खाली किए गए स्थान को हमें किससे भरना चाहिए?" उत्तर स्पष्ट है। खाली करने का उद्देश्य एक खाली व्यक्ति बनना नहीं है, बल्कि मसीह से भरा हुआ व्यक्ति बनना है। केवल अपने भीतर के पाप, लालच और आत्म-केंद्रितता को खाली कर देना पर्याप्त नहीं है। क्योंकि खाली करना अपने आप में विश्वास का उद्देश्य नहीं है। मसीही जीवन का अर्थ ऐसा खाली व्यक्ति बनना नहीं है जिसमें कोई इच्छा, विचार या भावना न हो। इसका अर्थ है उस जीवन को खाली करना जिसमें मैं स्वयं अपने जीवन का स्वामी बनकर जीता हूँ, और यीशु मसीह को अपने जीवन का प्रभु बनने देना। यह अपने आपको ऊँचा करने की इच्छा को खाली करके मसीह की नम्रता के साथ जीना है। यह अपने लिए सब कुछ पकड़कर रखने की इच्छा को खाली करके मसीह के प्रेम के साथ जीना है। यह घृणा, झूठ, शिकायत और ईर्ष्या को खाली करके मसीह के मन के साथ जीना है। इसलिए खाली करने के विषय में अंतिम प्रश्न यह नहीं होना चाहिए, "मेरे भीतर से क्या चला गया?" बल्कि यह होना चाहिए, "अब मेरे भीतर कौन राज्य कर रहा है?" मसीही का खाली होना अंततः ऐसे जीवन की ओर ले जाता है जिसमें मसीह हमारे भीतर जीवित रहते हैं।

अब मैं जीवित नहीं रहा, पर मसीह मुझ में जीवित हैं

प्रेरित पौलुस गलातियों 2:20 में मसीही जीवन के विषय में इस प्रकार अंगीकार करता है: "मैं मसीह के साथ क्रूस पर चढ़ाया गया हूँ, और अब मैं जीवित नहीं रहा, पर मसीह मुझ में जीवित हैं।" यह वचन स्पष्ट रूप से दिखाता है कि इस पूरी पुस्तक में जिस "खाली करने" की बात की गई है, उसे अंततः कहाँ पहुँचना चाहिए। अपने आपको

खाली करने का अर्थ अपने अस्तित्व को मिटा देना नहीं है। इसका अर्थ अपने विचारों, भावनाओं, विशिष्टता या व्यक्तित्व को मिटा देना भी नहीं है। न ही इसका अर्थ उन वरदानों और जिम्मेदारियों को छोड़ देना है जो परमेश्वर ने हमें दी हैं। खाली करने का अर्थ उस आत्म-केंद्रित मन को खाली करना है जो अपने जीवन का स्वामी स्वयं बनना चाहता है, और मसीह को अपने जीवन का प्रभु बनने देना है। इसीलिए पौलुस यह नहीं कहता, “मैं मिट गया हूँ,” बल्कि वह अंगीकार करता है, “मसीह मुझ में जीवित हैं।” अब जीवन का केंद्र बदल गया है। जो व्यक्ति पहले केवल यह पूछता था, “मैं क्या चाहता हूँ?” वह अब पूछने लगता है, “प्रभु, आप क्या चाहते हैं?” जो व्यक्ति पहले अपने विचारों को ही सही मानता था, वह अब पूछने लगता है, “परमेश्वर का वचन क्या कहता है?” जो व्यक्ति पहले केवल अपने लाभ के बारे में सोचता था, वह अब पूछने लगता है, “मसीह इस व्यक्ति से कैसे प्रेम करते?” जो व्यक्ति पहले अपने नाम की प्रशंसा और पहचान से प्रसन्न होता था, वह अब सोचने लगता है, “इसके द्वारा मसीह कैसे प्रकट हो सकते हैं?” यही वह परिवर्तन है जो खाली होने के बाद दिखाई देना चाहिए। खाली करने का उद्देश्य यह नहीं है कि मैं मिट जाऊँ, बल्कि यह है कि मेरे जीवन का केंद्र मुझसे हटकर मसीह हो जाए।

हमें मसीह के मन से भरना चाहिए

फिलिप्पियों 2:5 कहता है: “जैसा मसीह यीशु का स्वभाव था वैसा ही तुम्हारा भी स्वभाव हो।” यह वचन इस पुस्तक का आरंभिक बिंदु भी था। यीशु मसीह परमेश्वर के स्वरूप में होते हुए भी अपने आपको ऊँचा करने के लिए अपने अधिकारों से चिपके नहीं रहे। इसके विपरीत, उन्होंने अपने आपको खाली किया, दास का स्वरूप धारण किया और मनुष्यों के समान बने। उन्होंने अपने आपको दीन किया और मृत्यु तक, यहाँ तक कि क्रूस की मृत्यु तक, आज्ञाकारी रहे। इसलिए मसीह से भरने का अर्थ केवल यीशु के विषय में बहुत अधिक ज्ञान प्राप्त करना नहीं है। इसका अर्थ है यीशु के मन को धारण करना। मसीह की नम्रता सीखना। मसीह का प्रेम सीखना। मसीह की आज्ञाकारिता सीखना। मसीह की क्षमा सीखना। मसीह की सेवकाई सीखना। और उस मन को अपने घर, कलीसिया और कार्यस्थल में प्रकट होने देना। हम कई वर्षों तक बाइबल का अध्ययन कर सकते हैं। हमारे पास बहुत अधिक धर्मशास्त्रीय ज्ञान हो सकता है। हम कलीसिया में महत्वपूर्ण पदों पर हो सकते हैं। हम पास्टर बनकर वचन भी सिखा सकते हैं। फिर भी, यदि वह ज्ञान हमें मसीह के मन की ओर नहीं ले जाता, तो हमें फिर से अपने आपको जाँचना चाहिए। हम वचन को बहुत अधिक जान सकते हैं, फिर भी घमंडी हो सकते हैं। हम बहुत सेवकाई कर सकते हैं, फिर भी लोगों की मान्यता चाह सकते हैं। हम कलीसिया में सेवा कर सकते हैं, फिर भी घर में अपने परिवार को दुख पहुँचा सकते हैं। इसलिए महत्वपूर्ण बात केवल यह नहीं है कि हम कितना जानते हैं। महत्वपूर्ण यह है कि हमारे जीवन में मसीह का मन कितना प्रकट हो रहा है।

खाली किए गए स्थान को मसीह के चरित्र से भरना चाहिए

पिछले अध्यायों में हमने एक-एक करके उन बातों को देखा जिन्हें हमें अपने भीतर से खाली करना है। अब उन सबको फिर से विस्तार से समझाने की आवश्यकता नहीं है। अब महत्वपूर्ण यह है कि खाली किए गए स्थान में क्या प्रकट होता है। यदि हमने घमंड को खाली किया है, तो नम्रता प्रकट होनी चाहिए। यदि हमने लालच को खाली किया है, तो संतोष और उदारता प्रकट होनी चाहिए। यदि हमने पाखंड को खाली किया है, तो परमेश्वर के सामने ईमानदार जीवन प्रकट होना चाहिए। यदि हमने झूठ को खाली किया है, तो सत्य प्रकट होना चाहिए। यदि हमने घृणा को खाली किया है, तो प्रेम और क्षमा प्रकट होनी चाहिए। यदि हमने बुरे विचारों को खाली किया है, तो अच्छे और शुद्ध विचार बढ़ने चाहिए। यदि हमने व्यभिचारी और अशुद्ध कामनाओं को खाली किया है, तो पवित्रता और विश्वासयोग्यता प्रकट होनी चाहिए। यदि हमने शिकायत को खाली किया है, तो विश्वास और धन्यवाद प्रकट होना चाहिए। यदि हमने ईर्ष्या को खाली किया है, तो ऐसा प्रेम प्रकट होना चाहिए जो परमेश्वर द्वारा दूसरों को दिए गए अनुग्रह से आनंदित हो सके। परंतु हमें इन बातों को एक-दूसरे से अलग-अलग नहीं समझना चाहिए। नम्रता, सत्यनिष्ठा, प्रेम, पवित्रता और धन्यवाद—ये सब अंततः हमारे भीतर प्रकट होने वाले मसीह के चरित्र के रूप हैं। इसलिए हमें केवल यह नहीं पूछना चाहिए, “क्या मैं घमंड से मुक्त हूँ?” बल्कि पूछना चाहिए, “क्या मसीह की नम्रता मुझमें प्रकट हो रही है?” हमें केवल यह पूछकर नहीं रुकना चाहिए, “क्या मैंने झूठ बोलने से अपने आपको रोका?” बल्कि पूछना चाहिए, “क्या मसीह की सत्यनिष्ठा मेरे जीवन में प्रकट हो रही है?” हमें केवल यह पूछकर नहीं रुकना चाहिए, “क्या मैं किसी से घृणा करता हूँ?” बल्कि पूछना चाहिए, “क्या मैं लोगों से मसीह के प्रेम के द्वारा प्रेम कर रहा हूँ?” खाली करना निष्क्रिय विश्वास नहीं है। यह ऐसा विश्वास भी नहीं है जो केवल पाप न करने तक सीमित हो। खाली करने का अर्थ अपने भीतर ऐसा स्थान बनाना है जहाँ मसीह का जीवन और चरित्र अधिक से अधिक प्रकट हो सके।

हमें मसीह के वचन से भरना चाहिए

तो फिर हम मसीह से कैसे भर सकते हैं? सबसे पहले, मसीह का वचन हमारे भीतर बहुतायत से वास करे। पौलुस कुलुस्सियों 3:16 में कहता है: “मसीह के वचन को अपने हृदय में बहुतायत से बसने दो।” हमारे हृदय अनगिनत बातों से भरे रहते हैं: लोगों की बातें, संसार के मूल्य, इंटरनेट और सोशल मीडिया के द्वारा हमारे भीतर आने वाले असंख्य विचार, हमारे अपने भय और इच्छाएँ, और अतीत की चोटें और स्मृतियाँ। परंतु जब मसीह का वचन हमारे भीतर बहुतायत से वास करने लगता है, तो हमारे विचार और निर्णय बदलने लगते हैं। वचन हमारे विचारों पर प्रकाश डालता है। वह गलत इच्छाओं को प्रकट करता है। वह छिपे हुए घमंड को उजागर करता है। वह हमें हमारे भीतर की घृणा और ईर्ष्या का बोध कराता है। और साथ ही, वह हमें सिखाता है कि हमें किस प्रकार के मन के साथ जीना

चाहिए। इसलिए हमें केवल वचन पढ़कर नहीं रुकना चाहिए। हमें वचन को अपने हृदय में रखना चाहिए। उस पर मनन करना चाहिए। और उसका पालन करना चाहिए। “आज इस वचन के द्वारा परमेश्वर मुझसे क्या कह रहे हैं?” “मुझे क्या खाली करना है?” “मुझे किस बात में आज्ञापालन करना है?” “आज अपने घर, कलीसिया और कार्यस्थल में मैं इस वचन को कैसे जी सकता हूँ?” हमें इस प्रकार अपने आपको वचन के सामने रखना चाहिए। यीशु ने कहा: “मेरा जूआ अपने ऊपर उठा लो और मुझसे सीखो, क्योंकि मैं नम्र और मन में दीन हूँ” (मत्ती 11:29)। मसीह से भरा हुआ व्यक्ति वह है जो लगातार यीशु से सीखता रहता है।

पवित्र आत्मा की सहायता से मसीह का चरित्र प्रकट होना चाहिए

परंतु केवल वचन जानने और संकल्प करने से हम अपनी शक्ति के द्वारा मसीह के समान नहीं बन सकते। हमें पवित्र आत्मा की सहायता चाहिए। इफिसियों 5:18 कहता है: “पवित्र आत्मा से परिपूर्ण होते जाओ।” और गलातियों 5:22-23 आत्मा के फल का वर्णन इस प्रकार करता है: “प्रेम, आनन्द, शान्ति, धीरज, कृपा, भलाई, विश्वासयोग्यता, नम्रता और संयम।” ये फल ऐसे धार्मिक बाहरी रूप नहीं हैं जिन्हें हम अपने बल से जबरन उत्पन्न करते हैं। ये जीवन के वे फल हैं जो पवित्र आत्मा के हमारे भीतर कार्य करने पर प्रकट होते हैं। इसलिए हमें केवल अपनी शक्ति पर निर्भर नहीं रहना चाहिए। जब हमारे भीतर घृणा उठे, तो केवल यह न ठानें, “मुझे प्रेम करना चाहिए।” बल्कि प्रार्थना करें, “पवित्र आत्मा, इस व्यक्ति से प्रेम करने में मेरी सहायता कीजिए।” जब शिकायत उठे, तो केवल दाँत भींचकर यह न कहें, “मुझे शिकायत नहीं करनी चाहिए।” बल्कि प्रार्थना करें, “पवित्र आत्मा, परमेश्वर के अनुग्रह को याद करने और धन्यवाद देने में मेरी सहायता कीजिए।” जब ईर्ष्या उठे, तो केवल अपने आपको डाँटते हुए यह न कहें, “मुझे ईर्ष्या नहीं करनी चाहिए।” बल्कि प्रार्थना करें, “पवित्र आत्मा, मुझे ऐसा हृदय दीजिए जो उस अनुग्रह से आनंदित हो सके जो आपने उस व्यक्ति को दिया है।” मसीह से भरा जीवन ऐसा जीवन नहीं है जो अपनी इच्छाशक्ति से मसीह जैसा दिखाई देने का प्रयास करता है। यह ऐसा जीवन है जो वचन में बना रहता है, पवित्र आत्मा पर निर्भर करता है और अपने आपको परमेश्वर को सौंप देता है, ताकि मसीह का चरित्र हमारे भीतर फल उत्पन्न करे।

मसीह से भरा हुआ व्यक्ति सेवा करता है

इस पुस्तक के अध्याय 3 में हमने अपने आपको खाली करके दास के रूप में अपने पड़ोसी की सेवा करने वाले जीवन को देखा था। अब हम फिर उसी स्थान पर लौटते हैं, क्योंकि मसीह से भरा जीवन अंततः हमारे संबंधों में प्रकट होता है। यीशु ने अपने चेलों के पैर धोए। उन्होंने स्वयं अपनी कमर में अंगोछा बाँधा और दास के स्थान पर उतर आए। मसीह का मन अपने आपको ऊँचा करने वाला मन नहीं था, बल्कि सेवा करने वाला मन था। इसलिए

मसीह से भरा हुआ व्यक्ति पूछता है: “कौन मुझे पहचानेगा?” के बजाय, “आज मैं किसकी सेवा कर सकता हूँ?” “मुझे क्या मिलेगा?” के बजाय, “मैं क्या बाँट सकता हूँ?” “कोई मेरी सेवा क्यों नहीं करता?” के बजाय, “मैं सबसे पहले किसके पैर धो सकता हूँ?” हमें घर से आरंभ करना चाहिए। अपने सबसे निकट के परिवार के सदस्यों के साथ मसीह के मन से व्यवहार कीजिए। पति-पत्नी केवल अपनी-अपनी बात पर अड़े रहने के बजाय पहले एक-दूसरे की सुनें। यदि गलती हुई है, तो क्षमा माँगें। अपने बच्चों को केवल शब्दों से विश्वास न सिखाएँ। उन्हें ऐसे माता-पिता दिखाएँ जो पश्चाताप करते हैं, क्षमा करते हैं और सेवा करते हैं। कलीसिया में भी ऐसा ही होना चाहिए। पद खोजने के बजाय सेवा करने का स्थान खोजिए। केवल वही काम न कीजिए जिसके लिए लोग आपकी प्रशंसा करेंगे। भले ही कोई न जाने, फिर भी जो काम आवश्यक है उसे कीजिए। कार्यस्थल में भी मसीह का मन प्रकट कीजिए। केवल अपने लाभ के बारे में न सोचें; दूसरों के हित का भी ध्यान रखें। ईमानदारी से काम करें। कमज़ोर लोगों का लाभ न उठाएँ। दूसरों की सफलता से आनंदित हों। खाली होना सेवा के द्वारा प्रकट होता है। मसीह से भरे हुए व्यक्ति में मसीह की सेवकाई जीवन के फल के रूप में प्रकट होती है।

मसीह से भरना प्रतिदिन जारी रहने वाला जीवन है

हम एक ही निर्णय के द्वारा अपने भीतर के सारे घमंड को खाली नहीं कर सकते। एक बार पश्चाताप कर लेने से लालच फिर कभी नहीं आएगा—ऐसा भी नहीं है। आज घृणा को खाली कर देने का अर्थ यह नहीं कि कल हमें फिर कभी चोट नहीं पहुँचेगी। आज शिकायत न करने का अर्थ यह नहीं कि कल अपने आप धन्यवाद उत्पन्न हो जाएगा। इसलिए खाली करना एक बार की घटना नहीं, बल्कि प्रतिदिन जारी रहने वाली शिष्यता की प्रक्रिया है। हमें प्रतिदिन परमेश्वर के सामने अपने हृदय को जाँचना चाहिए। “आज मेरे हृदय पर सबसे अधिक किस बात का अधिकार है?” “इस समय मैं किस बात को पकड़े हुए हूँ?” “क्या कोई ऐसा क्षेत्र है जहाँ मैं स्वयं स्वामी बनने का प्रयास कर रहा हूँ?” “क्या घमंड, लालच, घृणा या शिकायत फिर से मेरे भीतर आ गई है?” जब भी हम इन बातों को पाते हैं, हमें उन्हें परमेश्वर के सामने ले जाना चाहिए। हमें पश्चाताप करना चाहिए। फिर से खाली होना चाहिए। और फिर से मसीह से भरना चाहिए। हम केवल कल के अनुग्रह के सहारे आज नहीं जी सकते। आज फिर हमें वचन के सामने खड़ा होना है। आज फिर हमें पवित्र आत्मा पर निर्भर होना है। आज फिर हमें मसीह का मन धारण करना है। आज फिर हमें प्रेम करना है। आज फिर हमें क्षमा करना है। आज फिर हमें सेवा करनी है। मसीही खाली होना एक बार पूरा हो जाने वाला कार्य नहीं है। यह प्रतिदिन मसीह का अनुसरण करने वाला जीवन है।

“वह बढ़े और मैं घटूँ”

यूहन्ना बपतिस्मा देने वाले ने यीशु को देखकर अंगीकार किया: “अवश्य है कि वह बढ़े और मैं घटूँ” (यूहन्ना 3:30)। इन शब्दों में उस व्यक्ति का हृदय दिखाई देता है जो स्वयं केंद्र में नहीं रहना चाहता, बल्कि चाहता है कि मसीह प्रकट हों। यही खाली होने की दिशा भी है। मेरे नाम के बजाय मसीह का नाम प्रकट हो। मेरी इच्छा पूरी होने के बजाय परमेश्वर की इच्छा पूरी होने से मैं आनंदित होऊँ। मेरी प्रशंसा होने के बजाय मसीह के ऊँचा किए जाने से मैं आनंदित होऊँ। इसलिए खाली होना हार नहीं है। यह मेरे अस्तित्व को मूल्यहीन बनाना भी नहीं है। बल्कि यह परमेश्वर द्वारा रचे गए व्यक्ति को उसके उचित स्थान पर वापस लाना है। जब मैं स्वामी के स्थान से नीचे उतरता हूँ और मसीह को प्रभु के रूप में ग्रहण करता हूँ, तभी मैं वह व्यक्ति बनकर जी सकता हूँ जैसा परमेश्वर मुझे बनाना चाहते हैं। जितना अधिक मैं अपने आपको पकड़े रखने की कोशिश करता हूँ, उतना अधिक भयभीत होता हूँ। जितना अधिक मैं अपने नाम को ऊँचा करने की कोशिश करता हूँ, उतना अधिक दूसरों से प्रतिस्पर्धा करता हूँ। जितना अधिक मैं अपनी इच्छा पूरी करने की कोशिश करता हूँ, उतना ही अधिक तब शिकायत करता हूँ जब चीजें मेरी इच्छा के अनुसार नहीं होतीं। परंतु जब मैं अपने आपको मसीह को सौंप देता हूँ, तब मैं स्वतंत्र हो जाता हूँ। यदि कोई दूसरा मुझसे अधिक ऊँचा हो जाए, तो भी ठीक है। यदि लोग मुझे पहचान न दें, तो भी ठीक है। यदि सब कुछ मेरी योजना के अनुसार न हो, तब भी मैं परमेश्वर पर भरोसा कर सकता हूँ। क्योंकि मैं अपने जीवन का प्रभु नहीं हूँ। मसीह हैं। अंततः खाली होना मसीह को खोना नहीं, बल्कि मसीह को पाना है।

अपने आपको खाली कीजिए और मसीह से भर जाइए

अब हमें फिर अपने आपसे पूछना चाहिए: “मुझे क्या खाली करना है?” परंतु वहीं मत रुकिए। इससे भी अधिक महत्वपूर्ण प्रश्न पूछिए: “इस समय मैं किससे भरा हुआ हूँ?” क्या मेरा हृदय चिंता से भरा है? क्या वह लोगों से मान्यता पाने की इच्छा से भरा है? क्या वह धन और सफलता की इच्छा से भरा है? क्या वह चोट और घृणा से भरा है? क्या वह तुलना और ईर्ष्या से भरा है? या वह मसीह के वचन और प्रेम से भरा है? हमारा लक्ष्य खाली व्यक्ति बनना नहीं है। हमारा लक्ष्य मसीह से भरा हुआ व्यक्ति बनना है। मसीह के वचन को अपने भीतर बहुतायत से वास करने दीजिए। पवित्र आत्मा से भर जाइए। मसीह का मन धारण कीजिए। मसीह के प्रेम से लोगों से प्रेम कीजिए। मसीह की क्षमा से क्षमा कीजिए। मसीह की नम्रता से सेवा कीजिए। और हमारे जीवन के द्वारा मसीह को प्रकट होने दीजिए। अपने घर में मसीह को प्रकट कीजिए। कलीसिया में मसीह को प्रकट कीजिए। कार्यस्थल में मसीह को प्रकट कीजिए। जब लोग हमसे मिलें, तो वे हमारे घमंड के बजाय मसीह के प्रेम को देखें। वे हमारे शब्दों में मसीह को देखें। वे हमारे चुनावों में मसीह को देखें। वे हमारी सेवा में मसीह को देखें। हमारा पूरा जीवन यह अंगीकार करे: “अब मैं जीवित नहीं रहा, पर मसीह मुझ में जीवित हैं।”

“मसीह से भरने” के सिद्धांत और व्यावहारिक दिशानिर्देश

खाली करने का उद्देश्य खाली व्यक्ति बनना नहीं, बल्कि मसीह से भरना है। इसलिए मसीही जीवन केवल इस प्रश्न पर नहीं रुकना चाहिए, “मैं क्या नहीं करूँगा?” हमें पूछना चाहिए: “आज मैं मसीह को अपने भीतर कैसे जीवित रहने दूँगा?”

1. प्रतिदिन जाँचिए कि आपके जीवन का प्रभु कौन है

मसीह से भरे हुए जीवन का पहला प्रश्न यह है: “इस समय मेरे जीवन का प्रभु कौन है?” जब कोई महत्वपूर्ण निर्णय लेना हो, तो केवल यह पूछकर न रुकें: “मैं क्या चाहता हूँ?” पूछें: “प्रभु क्या चाहते हैं?” घर, कलीसिया और कार्यस्थल में अपने विचारों और भावनाओं को अंतिम मापदंड न बनने दें। दिन की शुरुआत इस प्रकार प्रार्थना करके करें: “प्रभु, आज मुझे अपने जीवन का स्वामी बनने की कोशिश न करने दीजिए। मेरे विचारों से अधिक आपके वचन का अनुसरण करने और मेरी इच्छा से अधिक आपकी इच्छा को खोजने में मेरी सहायता कीजिए।”

2. वचन और प्रार्थना के द्वारा मसीह में बने रहिए

मसीह के वचन को हमारे भीतर बहुतायत से वास करना चाहिए। वचन पढ़िए। उस पर मनन कीजिए। प्रार्थना कीजिए। और आज्ञापालन कीजिए। वचन पढ़ने के बाद पूछिए: “आज इस वचन के द्वारा परमेश्वर मुझे क्या दिखा रहे हैं?” “मुझे क्या खाली करना है?” “मुझे किस बात में आज्ञापालन करना है?” “आज मुझे किसके प्रति इस वचन को अपने जीवन में उतारना है?” वचन केवल ज्ञान जमा करने की सामग्री नहीं होना चाहिए। वह परमेश्वर का ऐसा वचन होना चाहिए जो हमारे विचारों और जीवन पर शासन करे।

3. प्रतिदिन पवित्र आत्मा की सहायता माँगिए

हम अपनी शक्ति से मसीह का चरित्र उत्पन्न नहीं कर सकते। जब प्रेम की आवश्यकता हो, पवित्र आत्मा से प्रेम माँगिए। जब धैर्य की आवश्यकता हो, पवित्र आत्मा से सहायता माँगिए। जब शिकायत उठे, धन्यवाद माँगिए। जब ईर्ष्या उठे, ऐसा हृदय माँगिए जो दूसरों के साथ आनंदित हो सके। जब घृणा उठे, क्षमा करने की शक्ति माँगिए। जब परीक्षा आए, बच निकलने का मार्ग और संयम की शक्ति माँगिए। मसीह से भरा जीवन अपनी शक्ति पर घमंड करने वाला जीवन नहीं, बल्कि पवित्र आत्मा पर निर्भर रहने वाला जीवन है।

4. अपने सबसे निकट के लोगों के साथ मसीह के मन से व्यवहार कीजिए

हमारे भीतर वास्तव में मसीह का मन है या नहीं, यह इस बात से प्रकट होता है कि हम अपने सबसे निकट के लोगों के साथ कैसा व्यवहार करते हैं। घर से शुरू कीजिए। अपने जीवनसाथी की बात सुनिए। यदि आपने गलती की है, तो क्षमा माँगिए। यदि आपने अपने बच्चों पर क्रोध किया है, तो माता-पिता के अधिकार के पीछे न छिपें; अपनी गलती स्वीकार कीजिए। कलीसिया में लोगों का उपयोग न करें; उनकी सेवा करें। कार्यस्थल में लाभ के बजाय ईमानदारी को चुनें। अपने से कमज़ोर लोगों का सम्मान करें। अपने से अलग सोचने वाले लोगों का जल्दी न्याय न करें। मसीह के मन को केवल शब्दों में स्वीकार नहीं किया जाना चाहिए; उसे हमारे संबंधों में प्रकट होना चाहिए।

5. प्रतिदिन सेवा के छोटे-छोटे कार्यों का अभ्यास कीजिए

दिन की शुरुआत में पूछिए: “आज मैं किसकी सेवा कर सकता हूँ?” इसके लिए कोई बहुत बड़ा काम होना आवश्यक नहीं है। परिवार के किसी सदस्य की बात सुनना, कठिनाई में पड़े किसी व्यक्ति से संपर्क करना, किसी ज़रूरतमंद की सहायता करना, ऐसा काम खुशी से करना जिसे कोई नहीं देखता, किसी दूसरे व्यक्ति की सफलता पर उसे बधाई देना, और उस व्यक्ति के लिए प्रार्थना करना जिसे क्षमा करना आपके लिए कठिन है—ये सभी सेवा हैं। मसीह से भरा हुआ व्यक्ति अपना नाम छोड़ जाने की अपेक्षा यह अधिक चाहता है कि उसके द्वारा मसीह का प्रेम दूसरों तक पहुँचे।

6. दिन के अंत में जाँचिए कि आपका जीवन किससे भरा रहा

दिन के अंत में कुछ समय परमेश्वर के सामने ठहरिए। “आज मेरे हृदय को सबसे अधिक किस बात ने भर रखा था?” “क्या आज ऐसे क्षण थे जब मैंने अपने जीवन के स्वामी की तरह जीने की कोशिश की?” “क्या मेरे शब्दों और कार्यों में मसीह का मन प्रकट हुआ?” “आज मैंने किससे प्रेम किया और किसकी सेवा की?” “क्या घमंड, लालच,

घृणा, शिकायत या ईर्ष्या फिर से मेरे भीतर आ गई?" "आज परमेश्वर ने मुझे कौन-सा अनुग्रह दिया?" यदि पाप दिखाई दे, तो उसे छिपाइए मत। पश्चात्ताप कीजिए। यदि अनुग्रह दिखाई दे, तो धन्यवाद दीजिए। और फिर मसीह की ओर देखिए। परंतु इन सभी अभ्यासों से पहले हमें एक बात याद रखनी चाहिए। मसीह से भरना अपनी कोशिशों से अपने आपको बेहतर व्यक्ति बनाने का प्रयास नहीं है। सब कुछ परमेश्वर के अनुग्रह से शुरू होता है। परमेश्वर ने पहले हमसे प्रेम किया। मसीह ने हमें बचाया। पवित्र आत्मा हमारे भीतर कार्य करते हैं। इसलिए हम अपनी शक्ति पर घमंड नहीं करते। हम अनुग्रह की खोज करते हैं। हम पवित्र आत्मा पर निर्भर रहते हैं। और प्रतिदिन अपने आपको मसीह को सौंपते हैं। हम इस प्रकार प्रार्थना कर सकते हैं: "प्रभु, आज फिर मेरे भीतर से स्वामी का स्थान लेने की इच्छा को खाली कीजिए और मुझे मसीह से भर दीजिए। मेरे विचारों से अधिक आपके वचन का अनुसरण करने और मेरी इच्छा से अधिक आपकी इच्छा को खोजने में मेरी सहायता कीजिए। मसीह के वचन को मेरे भीतर बहुतायत से वास करने दीजिए और मुझे पवित्र आत्मा से भर दीजिए। मसीह की नम्रता, प्रेम, सत्यनिष्ठा और पवित्रता मेरे जीवन में प्रकट हो। मेरे घर, कलीसिया और कार्यस्थल में मुझे अपने आपको नहीं, बल्कि मसीह को प्रकट करने दीजिए। अपने ऊँचा किए जाने से अधिक मसीह के ऊँचा किए जाने में मुझे आनंदित होने दीजिए। मुझे ऐसा जीवन जीने दीजिए जिसमें अब मैं जीवित न रहूँ, बल्कि मसीह मुझ में जीवित रहें। यीशु मसीह के नाम में प्रार्थना करता हूँ। आमीन।"

खाली करने का उद्देश्य खाली व्यक्ति बनना नहीं है। यह मसीह से भरा हुआ व्यक्ति बनना है। खाली करने का अर्थ अपने आप से घृणा करना नहीं है। यह अपने भीतर से स्वामी बनने की इच्छा को खाली करना और मसीह को प्रभु के रूप में ग्रहण करना है। खाली करने का अर्थ कुछ न करते हुए जीवन बिताना नहीं है। यह मसीह के मन के साथ प्रेम और सेवा का जीवन जीना है। इसलिए प्रतिदिन अपने आपको खाली कीजिए। प्रतिदिन वचन से भरिए। प्रतिदिन पवित्र आत्मा पर निर्भर रहिए। प्रतिदिन मसीह का मन धारण कीजिए। और मसीह के प्रेम से लोगों की सेवा कीजिए। ऐसा जीवन जिसमें मेरे भीतर स्वयं स्वामी बनने की इच्छा खाली होती जाए और मसीह मेरे जीवन के प्रभु के रूप में अधिकाधिक स्पष्ट रूप से प्रकट होते जाएँ। ऐसा जीवन जिसमें अब मैं जीवित नहीं रहा, बल्कि मसीह मुझ में जीवित हैं। यही "खाली करने" का वह मार्ग है जिस पर हमें चलना है।

निष्कर्ष

अब जब हम इस पुस्तक को समाप्त कर रहे हैं, तो मैं फिर उन प्रश्नों की ओर लौटना चाहता हूँ जो हमने आरंभ में पूछे थे: “मुझे अपने भीतर से क्या खाली करना है?” और, “उस खाली किए गए स्थान को मुझे किससे भरना है?” ये दोनों प्रश्न इस पूरी पुस्तक में लगातार हमारे साथ रहे हैं। सबसे पहले हमने “छोड़ देने” और “खाली करने” के बीच के अंतर को देखा। यदि छोड़ देने का अर्थ उस चीज़ को छोड़ना है जिसे मैंने अपने हाथों में पकड़ रखा है, तो इस पुस्तक में जिस खाली करने की बात की गई है, वह इससे भी अधिक गहराई तक जाता है। इसका अर्थ है अपने हृदय के केंद्र से उस इच्छा को खाली करना जो स्वयं अपने जीवन का स्वामी बनना चाहती है। इसका अर्थ है उस मन को खाली करना जो मेरे विचारों, मेरी इच्छाओं, मेरी इच्छा-शक्ति, मेरे घमंड और मेरे नाम को जीवन के केंद्र में रखकर जीना चाहता है, और उस स्थान को मसीह को सौंप देना है। इसलिए खाली करना केवल कुछ त्याग देने वाला जीवन नहीं है। यह अपने भीतर से स्वयं स्वामी बनने की इच्छा को खाली करना और मसीह को अपने जीवन के प्रभु के रूप में ग्रहण करना है।

यीशु मसीह ने पहले अपने आपको खाली किया

हम खाली करने की बात इसलिए कर सकते हैं क्योंकि यीशु मसीह ने सबसे पहले आत्म-रिक्तीकरण का मार्ग अपनाया। फिलिप्पियों 2:7 कहता है कि यीशु ने “अपने आप को शून्य कर दिया, और दास का स्वरूप धारण किया, और मनुष्य की समानता में हो गया।” यीशु के आत्म-रिक्तीकरण का अर्थ यह नहीं था कि उन्होंने अपनी दिव्यता छोड़ दी। परमेश्वर के पुत्र यीशु ने अपने आपको नम्र किया, दास का स्वरूप धारण किया और हमारे बीच आए। और उन्होंने क्रूस की मृत्यु तक पिता की इच्छा का पालन किया। मसीह के खाली करने में नम्रता थी। आज्ञाकारिता थी। प्रेम था। सेवा थी। और क्रूस था। इसलिए जिस खाली करने की हम बात करते हैं, वह केवल आत्म-अनुशासन या मन को खाली करने का अभ्यास नहीं है। यह शिष्यत्व का मार्ग है जिसमें हम उस यीशु मसीह की ओर देखते हैं जिन्होंने हमारे लिए अपने आपको खाली किया, उनके मन को धारण करते हैं और उनका अनुसरण करते हैं। हमने पहले अपने आपको खाली नहीं किया। मसीह ने पहले अपने आपको हमारे लिए दे दिया। हमने पहले प्रेम नहीं किया। मसीह ने पहले हमसे प्रेम किया। इसलिए हमारा खाली करना भी मसीह के अनुग्रह से आरंभ होना चाहिए।

खाली करना अपने आपको दोषी ठहराने के लिए नहीं है

इस पुस्तक में हमने अपने भीतर के पाप के विभिन्न रूपों को देखा। वचन के सामने हमने एक-एक करके घमंड, लालच, पाखंड, झूठ, घृणा, बुरे विचार, यौन अनैतिकता, शिकायत और ईर्ष्या को देखा। कभी-कभी इन वचनों ने हमारे हृदय को गहराई से चुभोया होगा। “मेरे भीतर भी ऐसा घमंड है।” “मैं परमेश्वर से अधिक धन पर भरोसा करता रहा हूँ।” “जो रूप मैं लोगों को दिखाता हूँ, वह मेरे वास्तविक स्वरूप से अलग रहा है।” “अभी भी कोई ऐसा व्यक्ति है जिससे मैं घृणा करता हूँ और जिसे क्षमा नहीं कर पाया हूँ।” “मैं इतनी शिकायत करते हुए और दूसरों से अपनी तुलना करते हुए क्यों जीता रहा हूँ?” परंतु इन पापों को देखने का उद्देश्य हमें निराश करना या दोषी ठहराना नहीं था। इसका उद्देश्य पवित्रशास्त्र के दर्पण के सामने अपने आपको ईमानदारी से देखना था। जो कुछ हम छिपाते आए थे, उसे परमेश्वर के सामने प्रकट करना था। और यह स्वीकार करना था कि हम अपनी शक्ति से अपने आपको बदल नहीं सकते, और फिर से क्रूस की ओर देखना था। खाली करने की शुरुआत इस संकल्प से नहीं होती: “अब मुझे एक बेहतर व्यक्ति बनना है।” बल्कि यह इस अंगीकार से शुरू होती है: “प्रभु, मैं अपनी शक्ति से यह नहीं कर सकता।” मैं अपने भीतर के घमंड को अपनी शक्ति से पूरी तरह समाप्त नहीं कर सकता। मैं केवल अपनी इच्छाशक्ति से अपने लालच को शुद्ध नहीं कर सकता। पुरानी घृणा और घावों को केवल एक निर्णय से मिटा नहीं सकता। शिकायत और ईर्ष्या के साथ भी यही बात है। इसीलिए हमें अनुग्रह की आवश्यकता है। हमें क्रूस की आवश्यकता है। हमें पवित्र आत्मा की सहायता की आवश्यकता है। खाली करना अपनी शक्ति से अपने आपको शुद्ध करना नहीं है, बल्कि परमेश्वर के अनुग्रह के सामने अपने आपको ईमानदारी से समर्पित करना है।

खाली करने का उद्देश्य मसीह से भरना है

परंतु केवल खाली करके रुक जाना पर्याप्त नहीं है। इस पुस्तक को समाप्त करते समय हमें एक सत्य को पूरी स्पष्टता से धामे रखना चाहिए: खाली करने का उद्देश्य खाली व्यक्ति बनना नहीं, बल्कि मसीह से भरा हुआ व्यक्ति बनना है। हमारा लक्ष्य केवल ऐसा व्यक्ति बनना नहीं है जो कम पाप करता हो। यह केवल ऐसा व्यक्ति बनने पर समाप्त नहीं होता जो घमंडी न हो। विश्वास का लक्ष्य केवल ऐसा व्यक्ति बनना नहीं है जिसमें लालच न हो, जो क्रोध न करे, या जो ईर्ष्या न करे। उस खाली किए गए स्थान में मसीह का चरित्र प्रकट होना चाहिए। जहाँ घमंड खाली हुआ है, वहाँ मसीह की नम्रता प्रकट होनी चाहिए। जहाँ लालच खाली हुआ है, वहाँ संतोष और बाँटने की भावना प्रकट होनी चाहिए। जहाँ पाखंड और झूठ खाली हुए हैं, वहाँ सत्यनिष्ठा प्रकट होनी चाहिए। जहाँ घृणा खाली हुई है, वहाँ प्रेम और क्षमा प्रकट होने चाहिए। जहाँ बुरे विचार और यौन अनैतिकता खाली हुए हैं, वहाँ शुद्धता और पवित्रता प्रकट होनी चाहिए। जहाँ शिकायत और ईर्ष्या खाली हुई हैं, वहाँ विश्वास, धन्यवाद और प्रेम प्रकट होने चाहिए। परंतु यदि

इन सबको एक ही वाक्य में कहा जाए, तो अंततः बात एक ही है: मसीह हमारे भीतर प्रकट हों। प्रेरित पौलुस ने गलातियों 2:20 में इस प्रकार अंगीकार किया: “मैं मसीह के साथ क्रूस पर चढ़ाया गया हूँ, और अब मैं जीवित नहीं रहा, पर मसीह मुझ में जीवित हैं।” यही वह दिशा है जिसमें हमारा खाली करना आगे बढ़ना चाहिए। इसका अर्थ यह नहीं कि मैं मिट जाऊँ। इसका अर्थ है कि मेरे जीवन का केंद्र बदल जाए। वह जीवन जिसमें मैं स्वयं स्वामी बनकर जीता था, बदलकर ऐसा जीवन बन जाए जिसमें मसीह प्रभु हैं। यह अपनी इच्छा से अधिक परमेश्वर की इच्छा खोजने, अपने नाम से अधिक यीशु के नाम के प्रकट होने में आनंदित होने, और केवल अपने हित की खोज करने के बजाय मसीह के मन से दूसरों के हित का ध्यान रखने वाला जीवन है।

मसीह से भरा जीवन सेवा में प्रकट होता है

खाली करना केवल हृदय के भीतर होने वाली बात नहीं है। मसीह से भरे हुए व्यक्ति के जीवन में फल दिखाई देता है। उन फलों में से एक है सेवा। यीशु ने अपने आपको खाली किया और दास का स्वरूप धारण किया। और उन्होंने अपने चेलों के पैर धोए। इसलिए मसीह के मन से भरा हुआ व्यक्ति अपने आपको दिखाने के बजाय दूसरों की सेवा करता है। “कोई मुझे क्यों नहीं पहचानता?” पूछने के बजाय वह पूछता है, “आज मैं किसकी सेवा कर सकता हूँ?” “मुझे क्या मिल सकता है?” सोचने के बजाय वह सोचता है, “मैं क्या बाँट सकता हूँ?” यह सेवा सबसे निकट के स्थान से शुरू होनी चाहिए। अपने घर में मसीह को प्रकट कीजिए। अपने जीवनसाथी की बात सुनिए। गलती होने पर क्षमा माँगिए। अपने बच्चों को केवल शब्दों से विश्वास न सिखाइए; उन्हें ऐसे माता-पिता दिखाइए जो पश्चाताप करते हैं, क्षमा करते हैं और सेवा करते हैं। कलीसिया में भी मसीह को प्रकट कीजिए। पद पाने की कोशिश करने के बजाय सेवा करने का स्थान खोजिए। यदि लोग न भी पहचानें, तब भी आवश्यक काम कीजिए। कार्यस्थल में भी मसीह को प्रकट कीजिए। ईमानदारी से काम कीजिए। केवल अपना लाभ मत खोजिए। कमज़ोर लोगों का लाभ मत उठाइए, बल्कि उनका सम्मान कीजिए। दूसरों की सफलता में उनके साथ आनंदित होइए। खाली करना सेवा में प्रकट होता है। मसीह से भरा हुआ हृदय अंततः प्रेम और सेवा के जीवन में प्रवाहित होता है।

खाली करना प्रतिदिन चलने वाला मार्ग है

परंतु हम एक ही निर्णय के द्वारा सब कुछ खाली नहीं कर सकते। आज घमंड खाली करने का अर्थ यह नहीं कि कल फिर कभी घमंड नहीं होगा। आज लालच से पश्चाताप करने का अर्थ यह नहीं कि फिर कभी लालच उत्पन्न नहीं होगा। आज किसी को क्षमा करने का अर्थ यह नहीं कि पुरानी चोट फिर कभी याद नहीं आएगी। आज धन्यवाद देने का अर्थ यह नहीं कि कल हम फिर कभी शिकायत नहीं करेंगे। इसलिए खाली करना एक निर्णय से समाप्त होने

वाला कार्य नहीं है। यह प्रतिदिन मसीह का अनुसरण करने वाला शिष्यत्व का मार्ग है। हर दिन वचन के सामने अपने हृदय को जाँचिए: “प्रभु, आज मेरे भीतर से क्या खाली होना चाहिए?” और साथ ही पूछिए: “प्रभु, उस स्थान को किससे भरना चाहिए?” यदि घमंड फिर उठे, तो उसे खाली कीजिए। यदि लालच फिर हृदय को पकड़ ले, तो उसे खाली कीजिए। यदि घृणा फिर उठे, तो उसे परमेश्वर के सामने ले जाइए। यदि शिकायत उत्पन्न हो, तो परमेश्वर के अनुग्रह को याद कीजिए। यदि ईर्ष्या उत्पन्न हो, तो लोगों पर टिकी अपनी दृष्टि को परमेश्वर की ओर मोड़िए। और उस खाली स्थान को फिर से मसीह से भरिए। वचन से भरिए। प्रार्थना में परमेश्वर के पास जाइए। पवित्र आत्मा की सहायता माँगिए। मसीह का मन धारण कीजिए। और प्रेम कीजिए, क्षमा कीजिए और सेवा कीजिए। यही हमारे विश्वास का वह मार्ग है जिसे हमें हर दिन बार-बार चलना है।

हम फिर उन दो प्रश्नों के सामने खड़े होते हैं

अब इस पुस्तक को बंद करते समय, आरंभ में पूछे गए उन दो प्रश्नों के सामने फिर खड़े होइए: “मुझे क्या खाली करना है?” मेरे भीतर ऐसा कौन-सा घमंड है जिसे मैं अभी भी पकड़े हुए हूँ? मैं परमेश्वर से अधिक किस पर भरोसा कर रहा हूँ? क्या मैं लोगों को दिखाने के लिए कोई मुखौटा पहने हुए हूँ? क्या मैं सत्य को छिपा या विकृत कर रहा हूँ? क्या अभी भी कोई ऐसा व्यक्ति है जिससे मैं घृणा करता हूँ और जिसे क्षमा नहीं कर पाया हूँ? क्या मेरे मन में ऐसे बुरे विचार हैं जिन्हें मैं बार-बार बढ़ाता रहता हूँ? क्या गलत इच्छाओं ने मेरे हृदय को अपने वश में कर लिया है? क्या कोई ऐसा क्षेत्र है जिसमें मैं शिकायत करते हुए परमेश्वर पर भरोसा नहीं कर रहा हूँ? क्या मैं दूसरों से अपनी तुलना करके ईर्ष्या कर रहा हूँ? और दूसरा प्रश्न पूछिए: “मैं किससे भरा हुआ हूँ?” क्या मेरा हृदय मसीह के वचन से भरा हुआ है? क्या मसीह की नम्रता मुझमें प्रकट हो रही है? क्या मसीह का प्रेम मुझमें प्रकट हो रहा है? क्या मसीह की सत्यनिष्ठा और पवित्रता मुझमें प्रकट हो रही हैं? क्या धन्यवाद और विश्वास मेरे भीतर बढ़ रहे हैं? क्या मैं मसीह के मन से लोगों की सेवा कर रहा हूँ? और सबसे बढ़कर, इस समय मेरे जीवन का प्रभु कौन है? इन प्रश्नों के सामने किसी और के बारे में मत सोचिए। अपने जीवनसाथी के बारे में मत सोचिए। अपने बच्चों के बारे में मत सोचिए। कलीसिया के दूसरे सदस्यों के बारे में मत सोचिए। पहले अपने आपको परमेश्वर के सामने रखिए। और इस प्रकार प्रार्थना कीजिए: “प्रभु, आज भी मेरे हृदय को जाँचिए। मेरे भीतर उस मन को दिखाइए जो स्वयं स्वामी बनना चाहता है। जो कुछ खाली किया जाना चाहिए, उसे खाली करने में मेरी सहायता कीजिए और मुझे उसे छिपाए बिना ईमानदारी से आपके सामने रखने दीजिए। अपनी शक्ति से अपने आपको बदलने की कोशिश करने के बजाय मुझे क्रूस के अनुग्रह को थामने और पवित्र आत्मा की सहायता माँगने दीजिए। और मेरे खाली किए गए हृदय को मसीह से भर दीजिए। मसीह का वचन मेरे भीतर बहुतायत से वास करे, और मसीह की नम्रता, प्रेम, सत्यनिष्ठा और पवित्रता मेरे जीवन में प्रकट हों। घर में, कलीसिया में, कार्यस्थल में और जिन लोगों से मैं मिलता हूँ, उनके सामने मुझे अपने आपको

नहीं, बल्कि मसीह को प्रकट करने दीजिए। अपने ऊँचा किए जाने से अधिक मसीह के प्रकट होने में मुझे आनंदित होने दीजिए। मुझे ऐसा जीवन जीने दीजिए जिसमें अब मैं जीवित न रहूँ, बल्कि मसीह मुझमें जीवित रहें। यीशु मसीह के नाम में प्रार्थना करता हूँ। आमीन।” खाली करना अपने आपको मिटाना नहीं है। यह अपने भीतर से स्वयं स्वामी बनने की इच्छा को खाली करना है। खाली करना केवल त्याग देना नहीं है। यह अपने जीवन का केंद्र मसीह को सौंपना है। खाली करना खाली व्यक्ति बनना नहीं है। यह मसीह से भरा हुआ व्यक्ति बनते जाना है। और मसीह से भरा जीवन प्रेम और सेवा में प्रकट होता है। इसलिए आज भी अपने आपको खाली कीजिए। और मसीह से भरिए। अपने नाम से अधिक मसीह का नाम प्रकट होने दीजिए। अपनी इच्छा से अधिक परमेश्वर की इच्छा खोजिए। केवल अपने लाभ की खोज करने के बजाय मसीह के मन से अपने पड़ोसी की सेवा कीजिए। आप घटें और मसीह अधिकाधिक प्रकट हों। और प्रतिदिन इस अंगीकार के साथ जीइए: “अब मैं जीवित नहीं रहा, पर मसीह मुझमें जीवित हैं।” अपने आपको खाली कीजिए और मसीह से भरिए। यही “खाली करने” का वह मार्ग है जिस पर हमें यीशु मसीह के शिष्यों के रूप में प्रतिदिन चलना है।